साहित्य तथा मानवीय मूल्य

डॉ. संदीप एस. पाईकराव
डॉ. साईनाथ ग. शाहू

परिकल्पना

© सम्पादकाधीन

प्रथम संस्करण : 2024

ISBN : 978-93-95104-58-6

मूल्य : ₹ 495

शिवानंद तिवारी द्वारा *परिकल्पना,* के-37, अजीत विहार, दिल्ली-110084
से प्रकाशित और शेष प्रकाश शुक्ल, दिल्ली से टाइप सेट होकर
काम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 में मुद्रित

संपादकीय...

जब हम साहित्य की ओर देखते हैं, तो हम न केवल कहानियों और कविताओं की सुंदरता को देखते हैं, बल्कि उन मूल्यवान धारणाओं को भी महसूस करते हैं जो हमारे जीवन को आकार देती हैं। साहित्य किसी भी समाज के मानसिक और दार्शनिक दशा का प्रतिरूप होता है। जब लेखक अपनी कल्पनाओं को शब्दों में ढालते हैं, तो वे केवल एक कहानी नहीं बुनते, बल्कि समाज के बौद्धिक और भावनात्मक परिदृश्य को भी उजागर करते हैं। इस प्रक्रिया में, साहित्य उन गहरे मानवीय मूल्यों को सामने लाता है जो सामान्य जीवन में अक्सर नजरअंदाज हो जाते हैं। जैसे कि प्रेम, सच्चाई, न्याय और सहानुभूति। ये मूल्य हमें सोचने पर मजबूर करते हैं और हमारे अपने आंतरिक संघर्षों को समझने में मदद करते हैं। साहित्य और मानवीय मूल्य एक अद्‌भुत रिश्ते में बंधे हुए हैं, जैसे गहरा दोस्ती और सच्ची समझ।

जब हम एक अच्छे उपन्यास या कविता को पढ़ते हैं, तो हमें लगता है कि हम स्वयं उस कहानी का हिस्सा बन गए हैं। लेखक की शब्द शकित हमें अपने अनुभवों और भावनाओं को नए दृष्टिकोण से देखने की क्षमता देती है। साहित्य के माध्यम से, हम प्रेम, दुख, खुशी और दुःख के जटिल परिदृश्यों को समझते हैं और महसूस करते हैं। यह हमारे मानवीय भावनाओं को सही मायनों में सजीव करता है। इन भावनाओं के माध्यम से हम उन मानवीय मूल्यों को भी समझते हैं जो कभी न कभी हमारे खुद के जीवन में महत्वपूर्ण रहे हैं।

साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। यह एक शिक्षक भी है। जब हम अच्छे साहित्यिक कार्य पढ़ते हैं, तो हम नैतिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। ये कहानियां और कविताएं हमें जीवन के कठिन निर्णयों, सही और गलत के बीच के अंतर और इंसानियत के असली मायनों को समझने में मदद करती हैं। साहित्य का प्रभाव केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं होता। इसका समाज पर भी गहरा असर होता है। कई लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को उजागर करते

हैं और बदलाव की आवश्यकता पर जोर देते हैं।

साहित्य केवल समाज या नैतिकता तक सीमित नहीं है। यह व्यक्तिगत विकास का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। जब हम साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो हम अपने खुद के विचारों और धारणाओं को चुनौती देते हैं। यह हमें आत्म-निरीक्षण और आत्म-सुधार की ओर प्रेरित करता है। फिर चाहे वह एक आत्मकथा हो या एक प्रेरणादायक उपन्यास, साहित्य हमें नई विचारधाराओं और जीवन दृष्टिकोणों से परिचित कराता है। यह हमारे सोचने के तरीके को बदलता है और हमें खुद को बेहतर बनाने के लिए प्रेरित करता है।

साहित्य और संस्कृति का रिश्ता अटूट है। साहित्य एक संस्कृति की पहचान को दर्शाता है और उसकी विशेषताओं को समझने में मदद करता है। विभिन्न संस्कृतियों के साहित्य को पढ़कर हम उनकी परंपराओं, मान्यताओं और जीवनशैली को बेहतर समझ सकते हैं।

साहित्य केवल अतीत की तस्वीर नहीं है, बल्कि भविष्य की संभावना भी है। लेखक अपने विचारों और कल्पनाओं के माध्यम से भविष्य की दुनिया का चित्रण करते हैं। यह भविष्यवाणी कभी सकारात्मक होती है और कभी चेतावनी देने वाली।

साहित्य इस तरह से हमें भविष्य की संभावनाओं पर विचार करने की प्रेरणा देता है और समाज के विकास में योगदान करने का एक दृष्टिकोण प्रदान करता है। साहित्य और मानवीय मूल्य एक गहरे और समृद्ध संबंध में बंधे हुए हैं। साहित्य केवल कहानियों और कविताओं का संग्रह नहीं है। यह मानवीय अनुभव, नैतिकता और सामाजिक बदलाव की एक शक्ति है। यह हमें अपने भीतर की गहराइयों को समझने और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को महसूस करने की प्रेरणा देता है। जब आप अगली बार कोई किताब उठाएं या कविता पढ़ें, तो याद रखें कि आप सिर्फ एक अद्भुत कहानी का आनंद नहीं ले रहे हैं, बल्कि आप मानवीय मूल्यों और जीवन की गहरी समझ की यात्रा पर निकल रहे हैं। साहित्य का यह सफर हमारे जीवन को और भी समृद्ध और समझदारी से भरपूर बनाता है।

संपादक

अनुक्रम

संपादकीय... *3*

1. महात्मा गाँधी की सूक्तियों की भाषातत्विक विशेषताएँ 7
डॉ. सिराजूद्दीन नुर्मातोव

2. वैश्विक लोकसाहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति 19
प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'

3. भक्तिकाल के आलोक में महात्मा बसवेश्वर के साहित्य की प्रासंगिकता का अनुशीलन 31
डॉ. संतोषकुमार गाजले

4. विवेकानंद : ज्ञानयोग और मानवीय मूल्य 51
प्रा. डॉ. पल्लवी भूदेव पाटील

5. भक्ति साहित्य तथा मानवीय मूल्य 55
डॉ. भावेश वी. जाधव

6. निराला के साहित्य में मानवीय मूल्य 62
प्रा. डॉ. अशोक तुकाराम जाधव

7. साहित्य में मानवीय मूल्यों का महत्त्व 68
डॉ. आभा त्रिपाठी

8. साहित्य एवं मानवीय मूल्य 74
नानासाहेब देशमुख

9. हिन्दी काव्य साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य 80
डॉ. सुनील गुलाबसिंग जाधव

10. असमिया लोकगीतों में चित्रित लोक-संस्कृति 90
डॉ. नंदिता दत्त

11. भारतीय विविधता में राष्ट्रीय एकता का मूल्य और उसकी आवश्यकता 95
डॉ. आरले श्रीकांत लक्ष्मणराव

12. लोक साहित्य में मानवीय मूल्य 101
डॉ. खाजी एम.के.
13. मराठी उपन्यासकार रा. रं. बोराडे के उपन्यासों में मानवीय मूल्य 106
डॉ. शिवाजी आनंदराव सूर्यवंशी
14. प्राचीन भारत में ऐतिहासिक मानवीय मूल्य 111
डॉ. साईनाथ मारोती बिंदगे
15. जीवन में मानवीय मूल्यों का महत्व 118
डॉ. सोमनाथ गुंजकर
16. जया जादवानी की कहानियों में मानवीय मूल्य 124
डॉ. कोल्हे मंजुषा संदिपानराव
17. प्रेमाश्रम उपन्यास में स्त्रियों का मानवीय मूल्य 128
डॉ. विद्या किशनराव सावते
18. हिंदी साहित्य एवं मानवीय मूल्य 134
प्रा.स्मिता कल्याणराव चालिकवार
19. एक कंठ विषपायी में मूल्य-विवेचन 137
प्रा. डॉ. मनोहर गंगाधरराव चपळे
20. बाल साहित्य में जीवन मूल्य 145
प्रा. श्रीकांत विलासगिर गोस्वामी
21. मानवीय मूल्य का नया आयाम : 'धार' 149
डॉ. बेंद्रे बसवेश्वर नागोराव
22. मध्ययुगीन साहित्य में मानवीय मूल्य 155
प्रो. डॉ. लक्ष्मण तु. काळे

1. महात्मा गाँधी की सूक्तियों की भाषातत्विक विशेषताएँ

डॉ. सिराजूद्दीन नुर्मातोव
एसोसिएट प्रोफेसर, दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया की भाषाओं का विभाग, ताश्कंद सरकारी प्राच्य विद्या विश्वविद्यालय, उजबेकिस्तान

संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग में बनी मानवीय मूल्यों से संबंधित सूक्तियों के संदर्भ में : मानवीय मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ एवं लक्ष्य हैं जिन्हें मानव समाजी के माध्यम से सीखता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अभिलाषाएं बन जाती है। निर्णय मानवीय मल्यों के भी हो सकते हैं या फिर निर्णय की प्रक्रिया में इनकी अनदेखी भी की जाती है। परन्त मानव के कारण के अन्तर्गत किए गए सारे महत्वपूर्ण निर्णयों, में इन मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरे शब्दों में, मानवीय मूल्य ही निर्णयों के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्व है। मानवीय मूल्य ही वह कड़ी है जो व्यक्तिगत अनुभवों और निर्णयों, उद्देश्यों तथा कार्यों को जोड़ता है। सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को समझने में भी मानवीय मूल्य इसी प्रकार की भूमिका का निर्वाह करते हैं। मूल्य व्यक्ति व समाज के व्यवहारों को नियंत्रित व सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह एक ओर मनुष्य के मानसिक तनावों व संघर्षों को सुलझाते हुए आंतरिक संगति व सम्बद्धता को उत्पन करता है एवं दूसरी ओर आदर्श आयाम की ओर वैयक्तिक व सामाजिक जीवन की उन्नति को निर्देशित करता है।

महात्मा गाँधी की ओर से कही गई संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग में बनी मानवीय मूल्यों से संबंधित सूक्तियों को विश्लेषण करने से पहले हम सर्वप्रथम पाठकों को निम्नलिखित सामग्रियों से भी अवगत कराना उचित समझते हैं।

जैसे कि भाषाविदों को अच्छी तरह मालूम है कि आम तौर पर भाषा शिक्षण किसी भाषा के बोलने, सुनने, पढ़ने और लिखने की शिक्षा देने की पद्धति पर

आधारित है। इसका अनुसरण करते हुए हमारे संस्थान में गत वर्षों के दौरान तीन मुख्य परम्पराओं का शुभारंभ और रचनात्मक विकास हुआ था जो क्रमशः तीन शिक्षात्मक आयामों या दिशाओं में परिवर्तित हो गयी थीं अर्थात हिन्दी भाषा व साहित्य के अध्यापकों, अनुवादकों और शोधकर्ता विद्वानों की तैयारी का काम।

आजकल तक इस प्रक्रिया के अंतर्गत जिसका श्रीगणेश भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के उपलक्ष्य में किया गया था, कुल मिलाकर एक हजार से अधिक विशेषज्ञों की तैयारी की गयी है जो वर्तमान काल न केवल हमारे देश, बल्कि पूरे माने में विदेशों में भी सफलतापूर्वक कार्यरत हैं। इनकी संख्या में रूस, युक्रेन, कजाकिस्तान, किरगिजस्तान, ताजिकिस्तान, जॉर्जिया, आजेरबयजान, क्यूबा, वियतनाम, पोलैंड, जर्मनी, बोल्गेरिया, मंगोलिया, लिटोनिया जैसे छोटे और बड़े देश भी हैं।

गत अवधि के दौरान हमारे यहाँ नवीन भारतीय भाषाओं तथा साहित्य पर विशेषज्ञों की तैयारी के उद्देश्य से बहुत सी पाठ्य पुस्तकें, शब्दकोश और दूसरी पाठ्य सामग्रियाँ संकलित की गई थीं, जिनका उपयोग माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के संस्थानों में हो रहा है और विभाग के सारे सदस्यगण हमारे पूर्वजों और स्वर्गवास गुरुजनों के सृजनात्मक घरोहर को सीखने और दैनिक कार्यों में लाने को अपना सृजनात्मक कर्तव्य समझते हैं।

वैसे ही हमारे विभाग ने पचहत्तर वर्षों के दौरान दो हजार से अधिक विशेषज्ञों को तैयार किया है जो वर्तमान काल में वे अबू रयखाँ बेरूनिय नामक विज्ञान अकादमी के प्राच्य विद्या संस्थान् में, विभिन्न प्रकाशन-गृहों में, उजबेकिस्तान के रेडियो और टेलिविजन कंपनी में, विदेश मंत्रालय जैसे अनेक सरकारी कार्यालयों में, विशेष तौर पर पाठशालाओं और लाइस्मों में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।

गत अवधि के दौरान हमारे यहाँ नवीन भारतीय भाषाओं तथा साहित्य पर विशेषज्ञों की तैयारी के उद्देश्य से बहुत सी पाठ्य पुस्तकें, शब्दकोश और दूसरी पाठ्य सामग्रियाँ संकलित की गई थीं, जिनका उपयोग माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के संस्थानों में हो रहा है और विभाग के सारे सदस्यगण हमारे पूर्वजों और स्वर्गवास गुरुजनों के सृजनात्मक धरोहर को सीखने और दैनिक कार्यों में लाने को अपना सृजनात्मक कर्तव्य समझते हैं। हम इसी सिलसिले में पाठकों को हमारे प्रयत्नों के कुछ परिणामों से परिचित कराना चाहते हैं।

स्वाधीन उज्बेकिस्तान के माध्यमिक और उच्चशिक्षा के क्षेत्रों में हो रहे सुधारों के कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए, जिनका लक्ष्य निरंतर शिक्षा का कार्यान्वयन माना जाता है, हिन्दी की अध्यापन प्रणाली को हम तीन चरणों में विभाजित कर

सकते हैं। इनमें सब से पहले चरण में आम शिक्षा प्रदान करनेवाली दो पाठशालाएँ हैं जहाँ दूसरी कक्षा से नौवीं कक्षा तक पढ़ाई होती है। दूसरे चरण में तो जिसमें दसवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक शिक्षा दी जाती है। अकादमिक लाय्सम का नाम ले लिया है और तीसरा चरण हमारे विभाग में दी जानेवाली बी ए और एम ए की शिक्षा के रूप में प्रस्तुत है।

उजबेकिस्तान में हिन्दी शोध कार्य की परंपराएँ आदिकालीन पूर्व की अद्वितीय सभ्यता और खास तौर से भारत की प्राचीन आध्यात्मिक तथा भौतिक संस्कृति की ओर उजबेक लोगों के मन व मस्तिष्क में खिलनेवाली सदियों पुरानी अभिरुचि और प्राकृतिक आकर्षण से संबंधित हैं, जो कुल मिलाकर इस देश में Oriental Studies में परिवर्तित हो गये थे।

यह सर्वविदित है कि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये, तो मध्य एशिया में भारत की ओर जीता-जागता दिलचस्पी की जड़ें बहुत गहरे भूतकाल से जमी थीं। उसी जमाने से हमारे युग तक अपनी मौलिकता और वैज्ञानिक महत्व में अतुल्य ख्वारजम के विद्वान अल्बेरूनी की अद्भुत कृतियाँ आ पहुँची हैं, जिन्होंने भारत और उसकी आश्चर्यजनक सभ्यता की चमत्कार के अदर्शों को सारे विश्व को खोलकर दिखाया। भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये रचनाएँ, जो दसवीं और ग्यारहवीं शतियों के संगम में सृष्टि की गई थीं, अपने आशय में भारतीय भाषाओं के इतिहास एक महत्वपूर्ण मोड़ को अहमियत रखने वाले काल का द्योतक हैं, जिस में मध्य आर्य-भारतीय भाषा काल से नवीनभारतीय भाषाकाल की ओर संक्रमण प्रतिबिंबित हैं।[1]

दूसरे उदाहरण के रूप में चौदहवीं शती के भारतीय महाकवि अमीर खुसरो देहलेवी के ललित साहित्य की कलापूर्ण चरित्रों और कथावस्तुओं का गहरा प्रभाव उजबेक साहित्य के जन्मदाता अजिमोरशान शायर अलिशेर नवाई की विशाल महाकृति ख़मसा प्रतिशत में पाया जाता है।

भारत और भारतीय भाषाओं से सीधा संबंध रखनेवाली अमूल्य जानकारियाँ आगे चलकर दूसरे उज़्बेक कवि और चिंतक म.ज. बाबर की विख्यात रचना 'तूजके बाबरी या उजबेक में जिसका शीर्षक 'बाबर-नामा प्रतिशत में निहित हैं। उस समय से हमारे देशों के सम्पर्क निरंतर बढ़ने लगे थे और इस प्रक्रिया में अनेक उजबेक कवि और लेखकों ने योगदान किया था, जिनमें उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में रहनेवाले जाकिरजान फुर्कत, इसख़ाक्ख़ान इब्रत और हमजा नियाजी जैसे कीर्तिप्राप्त भद्रजन भी विशेष स्थान रखते हैं।

उपरोक्त तथ्य आजकल के उजबेक भारतशास्त्र के विकास के लिये और

खासकर **Indology** के हेतु बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। निस्संदेह भूतकाल में भारतीय भाषाओं और उनमें हिन्दी भाषा के क्षेत्र में प्रज्जवल उपलब्धियाँ उज़ूबेक विद्वानों और चिंतकों को मिली थीं।

हमारी समझ में सबसे पहले मुख्य सिद्धांत के रूप में उज्बेक और हिन्दी भाषाओं की सांस्कृतिक भाषागत तथा topological समानता का सिद्धांत परमोचित माना जा सकता है, जो हमारे सदियों पुराने प्रचीन और दीर्घकालीन ऐतिहासिक आपसी संबंधों का परिणाम है। इसीलिये हमारी जनताओं के इतिहास में जर्दूश्ती, सूफी-मत, भक्ति, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम की स्पष्ट रेखाएँ सर्वविदित हैं, जिनके सौजन्य से दोनों जनताओं के लिये अल-बेरूनिय, इब्न सिना, अमीर खुसरो, अलिशेर नवाई, जहरिद्दीन मुहम्मद बबुर, अब्दुलकदिर बेदिल, जेबुनिसा, बयरम खां, अबदुररहीम खने खनान, मिर्जा गालिब और आनकल रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, जुल्फीय, अम्रीता प्रितम जैसे व्यक्तित्व, कवि, लेखक, राजनीतिज्ञ और सांस्कृतिक तथा कला की हस्तियाँ भी जीते-जागते मिसाल हो सकते हैं।

जहाँ तक भाषागत दृष्टिकोण का सवाल हो, उज्बेक और हिन्दी भाषाओं में कई हजार की संख्या में पायी जानेवाली आम शब्दावली के अतिरिक्त, जो सांस्कृतिक शब्दसंम्पदा का एक महत्वपूर्ण भाग सिद्ध है, ध्वनि विचार, व्याकरण और वाक्य-विन्यास के क्षेत्रों में भी बहुत सी समान विशेषताएँ दृष्टिगोचर हैं। इसी कारण दोनों भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण के संकलन के हेतु बहुत ठोस आधार बनाया जा सकता है और इसी के भीतर एक ऐसे आधारभूत तत्त्वों का आविष्कार किया जा सकता है, जो पाठन प्रक्रिया के लिये परम लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरण के लिये ध्वनिसमूह में ज (za), क (qa), ग (g'a), ख (ha), फ (fa) जैसे व्यंजन हैं, जो दोनों भाषाओं में अरबी और फारसी प्रभावों के फलस्वरूप प्रविष्ट हुए थे। व्याकरण में तो ऐसी बहुत सी संयुक्त क्रियाएँ मिल जाती हैं, जो दोनों भाषाओं में लगातार उपलब्ध हैं। फिर संज्ञा शब्दों के विकृत रूप जो विशेष प्रत्ययों के माध्यम से उज्बेक भाषा में बनते हैं हिन्दी में विभक्तियों या परसर्गों के प्रयोग के अनुकूल हैं और फिर बिलकुल इसी प्रकार दोनों भाषाओं के वाक्य-विन्यास में शब्दों का प्रमाणित क्रम निर्धारण एक ही पद्धति से स्थापित किया जाता है। इसी क्षेत्र में संयुक्त वाक्यों के निर्माण में भी ''लेकिन'', ''बल्कि'', ''कि'', ''ताकि'', ''अगर'', ''अगरची'', ''या'' जैसे संयोजकों की दोनों भाषाओं में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि उजबेक भारतविदों के गर्व और सौभाग्य की बात

है कि सन् 2014 में भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी की ओर से स्वर्गीय प्रोफेसर अजाद शमातोव जॉर्ज ग्रीर्सन नामक पुरस्कार से सम्मानित किये गये हैं।

प्रोफेसर अजाद शमातोव ने उजबेकिस्तान में भारतविद्या के विकास के लिए, विशेषकर हिन्दी भाषा को प्रचार-प्रसार करने में काफी परिश्रम किये हैं। उनकी तरफ से भाषा विज्ञान, भारतीय साहित्य, विशेषकर भारतीय आर्य भाषाओं से संबंधित दो सौ से अधिक वैज्ञानिक-ग्रंथ, निबंध, पाठ्य-पुस्तकें, शब्दकोश बड़ी संख्या में प्रकाशित किये गये हैं। उनकी पहलकदमी के अनुसार महात्मा गाँधी भारतविद्या केंद्र की नींव भी रखी गयी थी और इसी केंद्र में प्रोफेसर अजाद शमातोव की ओर से हिन्दी भाषा और भारतीय साहित्य से संबंधित विभिन्न विषयों पर कई संगोष्ठियों का आयोजन किया गया है। प्रतिवर्ष महान नेता महात्मा गाँधी जी के जन्म दिन के सुअवसर पर सम्मेलनों का आयोजन भी किया जाता है। इन सम्मेलनों में भारतविद् विद्वानों, हिन्दीप्रेमियों की ओर से गाँधी जी की जीवनी से संबंधित आलेखों की प्रस्तुति की जाती है।

यह सुस्पष्ट है कि मूल्य किसी व्यक्ति को उसके बुजुर्गों द्वारा दी गई शिक्षाएँ हैं। एक व्यक्ति का व्यवहार और कार्य काफी हद तक उन मूल्यों पर आधारित होते हैं जो वह अपने बचपन के दौरान करता है। यह शिक्षकों और माता-पिता की जिम्मेदारी है कि वे अपने बच्चों को अच्छा इंसान बनाने के लिए अच्छे संस्कार दें।

अच्छे मूल्यों वाले व्यक्ति को हमेशा दूसरे लोगों द्वारा देखा जाता है। ऐसा व्यक्ति विश्वसनीय होता है और इस प्रकार उसका हर जगह स्वागत किया जाता है। अच्छे मूल्य हमारे व्यक्तिगत और पेशेवर जीवन दोनों को सकारात्मक दिशा देने में मदद करते हैं।

माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों में अच्छे संस्कारों का प्रसार करें। हमारे बचपन के दौरान हम जो मूल्य सीखते हैं वह जीवन भर हमारे साथ रहता है। हमारे चरित्र और समग्र व्यक्तित्व को हमारे जीवन के शुरुआती वर्षों के दौरान हम जिस तरह के मूल्यों से प्रेरित करते हैं, उससे काफी हद तक निर्धारित होता है। यदि हम अपने बचपन के दौरान इन मूल्यों को सिखाया जाता है, तो हम जिम्मेदार और ईमानदार वयस्क बनते हैं। इसी तरह, अगर हमें इन विराट मूल्यों का महत्व नहीं सिखाया जाता है, तो हम उन्हें बहुत अधिक ध्यान नहीं देते हैं और बड़े होते हैं।

मूल्यों का व्यक्ति के लिए अत्यधिक महत्व है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि वे अपने व्यवहार, स्वभाव और जीवन और अन्य लोगों के प्रति समग्र व्यवहार का निर्धारण करते हैं। हम अपने जीवन में जो निर्णय लेते हैं, वे काफी हद तक हमारे

मूल्यों के आधार पर होते हैं। जीवन में हमारे फैसले न केवल हमें बल्कि हमारे परिवार, हमारे संगठन, हमारे समाज के साथ-साथ हमारे राष्ट्र को भी प्रभावित करते हैं।

कुछ मूल्यों में ईमानदारी, समर्पण, प्रतिबद्धता, आशावाद, शिष्टाचार, धैर्य, करुणा, क्षमा, सहयोग, एकता, आत्म नियंत्रण, सम्मान, प्रेम और देखभाल शामिल हैं। ये सभी मूल्य एक मजबूत चरित्र का निर्माण करते हैं। अच्छे मूल्य व्यक्ति को विनम्र और भरोसेमंद बनाते हैं। चाहे वह नौकरी हो या व्यक्तिगत संबंध, अच्छे मूल्यों वाले व्यक्ति पर सभी की नजर होती है। एक व्यक्ति के मूल्य उसके व्यक्तित्व में परिलक्षित होते हैं।

अच्छे संस्कारों वाला व्यक्ति सकारात्मक सोच का निर्वाह करता है और प्रेम और आनंद फैलाता है। वह दूसरों की जरूरतों के बारे में विचार करता है। अपने जीवन में अच्छा करने के अलावा, ऐसा व्यक्ति अक्सर जब भी वह कर सकता है, दूसरों के उत्थान और मदद करने के लिए देखा जाता है।

वैसे ही मूल्य का अर्थ इसमें कोई शक नहीं कि 21वीं सदी में मूल्य आधारित शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय मूल्यों की स्थापना का समय नहीं रहा बल्कि यह समय मूल्य विघटन का समय है। ऐसे समय उम्मीद की एक किरण नजर आती है, वह है मूल्य आधारित शिक्षा प्रदान करना।

आज समाज के चारों ओर अविश्वास, बेईमानी, ईर्ष्या, लूट, भ्रष्टाचार, असम्मान, माता-पिता की अवहेलना जैसे मानवीय मूल्यों के पतन का माहौल बना हुआ है जिसके परिणामस्वरूप समाज में सकारात्मकता के स्थान पर नकारात्मकता की सोच निर्मित हो रही है। ऐसे विकृत व बिगड़े हुए माहौल को सुधारने व संवारने के लिये शिक्षा का साथ ही कारगर साधन है।

मूल्य वे अमूर्त अवधारणाएँ या मानक हैं, जिनके आधार पर समाज में भावनाओं, विचारों, कार्यों, गुण, वस्तुओं, व्यक्तियों, समूहों, लक्ष्यों, साधनों आदि का मूल्यांकन वांछनीय या अवांछनीय, अधिक प्रशंसनीय या कम प्रशंसनीय, अधिक सही या कम सही आदि के रूप में किया जाता है, मूल्य कहलाते हैं। मूल्य प्रत्येक समाज के लिये अति संवेदनशील व महत्वपूर्ण होते हैं। समाज में सामाजिक सन्तुलन व व्यवहार में एकरूपता बनाए रखने में सहायक होते हैं। मूल्य शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के वालेरे शब्द से हुई है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। भारतीय धर्मग्रन्थों में भी मूल्य के स्थान पर शील शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो मूल्य वस्तुतः एक प्रकार का मानक है जो समाज के व्यक्तियों तथा समाज के स्तर, परम्पराओं, सिद्धान्तों की

पहचान तथा समाज के व्यक्तियों से उनके प्रति सम्मान की भावना को परिलक्षित है।

मानवीय मूल्यों के बारे में विद्वानों की ओर से इसी प्रकार के विचार भी किए गए हैं, ''मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि कर सके।'' मूल्य वे आदर्श विश्वास या प्रतिमान हैं जिनको एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने ग्रहण कर लिया है, ''मूल्य किसी सामाजिक व्यवस्था में कई अनुस्थापनों में से किसी एक अनुस्थापना को चुनने का एक मानक है।''

राधाकमल मुकर्जी ने लिखा है, ''मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ एवं लक्ष्य हैं जिनकी अन्तरीकरण सीखने या सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अधिमान, मान तथा अभिलाषाएँ बन जाती हैं। आपके विचार से समाज वैज्ञानिकों द्वारा मूल्य को उचित रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, मनोविज्ञान में मूल्यों को केवल अधिमानों के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि अन्य सामाजिक विज्ञानों के मूल्यों को क्रियाशील अवश्यकरणीय या कर्त्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु ये सब मूल्यों की वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट नहीं करते। मूल्यों की उत्पत्ति एक सामाजिक संरचना विशेष के सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप धीरे-धीरे होती है। वास्तव में मनुष्य को अपने परिस्थितिगत पर्यावरण से एक संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता होती है, अपने जीवन-निर्वाह व भरण-पोषण सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना होता है, अपने समाज या समूहों के अन्य लोगों के साथ सामाजिक का सामना करना होता है, अपने समाज या समूहों के अन्य लोगों के साथ सामाजिक-जीवन में भागीदार बनना पड़ता है एवं अपने व्यक्तित्व व संस्कृति के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया में भी सम्मिलित होना पड़ता है।

विद्वानों द्वारा समय-समय पर दी गयी मूल्य की परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मूल्य मानवीय व्यवहार का निर्धारक व निर्देशक सिद्धान्त तथा मानक हैं जो सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न विकल्पों में से चयनित व्यवस्था के अनुरूप कार्य करने को दिशा निर्देश प्रदान करते हैं।

भारत में कबीर, गुरूनानक देव, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद जैसे कई समाज सुधारक पैदा हुए जिन्होंने समाज में व्याप्त कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया तथा कई सामाजिक धार्मिक मुद्दों पर समाज को पुनर्जागृत किया। उनकी उपलब्धियों से जिन मानवीय मल्यों पर प्रकाश पड़ता है उसकी एक सूची कुछ इस प्रकार है : नवता के प्रति आदर, प्रत्येक की गरिमा का ध्यान, मानवतावाद, तर्क और अन्वेषण के सहारे सत्य की खोज, दयालुता और

करुणा, आत्मसंतोष, सामाजिक समानता।

मूल्यों के विकास में पारिवारिक शिक्षा की भूमिका बड़ी है। समाज का आधार मानवीय सम्बन्धों पर निर्भर करता है। मानवीय सम्बन्धों के मूल स्रोत के रूप में परिवार रूपी संगठन का प्राथमिक स्थान है। परिवार के जो सदस्य माता-पिता, भाई-बहन, दादी दादा यह समाज में अन्यत्र कहीं किन्हीं भी सम्बन्धों में नहीं मिलते किन्तु व्यक्ति परिवार से बाहर निकल कर भी स्त्रियों से मातृत्व, बड़ों से पितृत्व सम-वय के व्यक्तियों से भ्रातृत्व सम्बन्धों को निर्मित करता है। यदि उसके पारिवारिक अनुभव सुखद, सहज, सरल एवं सामंजस्यपूर्ण होते हैं तो कालान्तर में परिवार के इतर भी वह उसी प्रकार के सम्बन्ध एवं भावनात्मक सम्बद्धता उत्पन्न कर लेता है। अतः इन पारिवारिक मूल्यों की शिक्षा में पारिवारिक शिक्षा एवं संस्कारों का अनुपम योगदान होता है। रेमण्ट के अनुसार, ''बच्चे भले ही एक ही विद्यालय में पढ़ते हों, एक ही समान शिक्षकों से प्रभावित हों, एक सा ही अध्ययन करते हों फिर भी वे अपने सामान्य ज्ञान, रुचियों, भाषण, व्यवहार और नैतिकता में अपने घरों के कारण जहाँ से वे आते हैं पूर्णतः भिन्न हो सकते हैं।'' वस्तुतः मूल्यों की शिक्षा बच्चे को घर से ही मिलनी शुरू होती है। मूल्यों के विकास में सामाजिक शिक्षा की भूमिका मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से अलग उसके अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मनुष्य ने अपने इस दीर्घकालिक इतिहास में समाज रूपी संगठन का निर्माण किया है। इस संगठन में हमें कार्य करने के लिये जहाँ एक ओर एक सीमाओं के दायरे में रखा गया है वहीं दूसरी ओर कुछ कार्यों को करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता प्राप्त है। साथ ही कुछ कार्यों को करना पूर्णतः निषेध भी है। समाज रूपी संगठन में व्यवस्था का निर्धारण किया गया है जिसमें हमें एक निश्चित प्रकार से रहन-सहन व व्यवहार करना पड़ता है।

मानवीय समाज अपने मूल्यों, आदशों, परम्पराओं, मानकों, क्रियाओं को आने वाली सन्तति को हस्तान्तरित करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। जिन समाजों में उनके सर्वग्राही समाज स्वीकृत मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं, मानकों एवं क्रियाओं के प्रति लोगों का सम्मान व निष्ठा की भावना होती है। उस समाज के मूल्यों की समृद्धता उतनी ही अधिक होती है। फ्रैंकलिन के अनुसार, समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने सदस्यों में ज्ञान कौशलों, आदर्श मूल्यों तथा व्यवहारों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिये स्थापित करता है, जोकि उसके स्वयं के स्थायित्व एवं निरन्तर विकास के लिये परम आवश्यक है।

मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत व्यापक एवं नवीन अवधारणा

अवश्य हो सकती है किन्तु इसका अस्तित्व सदियों से रहा है। पारम्परिक रूप में धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा जैसी अवधारणा जो प्रचलित है मूल्यपरक शिक्षा उससे भिन्न है। जहाँ तक मूल्यपरक शिक्षा का प्रश्न है उससे तात्पर्य उस शिक्षा से है जिससे हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य एक माला के समान पिरोए हुए हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न तत्वों, आयामों, विषयों को मूल्यपरक बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर बल दिया जाता है ।

मूल्यों की इस प्रकार की विशेषताएँ होती हैं- मूल्य के दो पहलू होते हैं। प्रथम विषय-वस्तु और दूसरा तीव्रता। मूल्य कुछ अंश तक आंतरिक भाव होते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में प्रतिबिम्बित होते हैं। क्षेत्र विशेष के संदर्भ में मूल्य के महत्त्व में अंतर पाया जाता है। मूल्य अमूर्त होते हैं। मूल्य सीखे जाते हैं।

मूल्यों के यही प्रकार होते हैं। दृष्टिकोण के आधार पर-सकारात्मक मूल्य, जैसे-अहिंसा, शांति, धैर्य आदि। नकारात्मक मूल्य, जैसे-हिंसा, अन्याय, कायरता आदि।

उद्देश्य के आधार पर-साध्य मूल्य-वे सभी वस्तुएँ या अवस्थाएँ, जो स्वयं में शुभ होती हैं। साधन मूल्य-जो अपने आप में शुभ न होकर किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में शुभ होता है।

विषय क्षेत्र के आधार पर-सामाजिक मूल्य, जैसे-अधिकार, कर्तृतव्य, न्याय आदि। मानव मूल्य, जैसे-नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य आदि। नैतिक मूल्य, जैसे-न्याय, ईमानदारी आदि। आध्यात्मिक मूल्य, जैसे-शांति, प्रेम, अहिंसा आदि। भौतिक मूल्य, जैसे-भोजन, मकान, वस्त्र आदि। सौंदर्यात्मक मूल्य, प्रकृति, कला एवं मानवीय जीवन के सौंदर्य को कहते हैं। मनोवैज्ञानिक मूल्य, जैसे-प्रेम, दया आदि।

कार्य क्षेत्र के आधार पर-राजनीतिक मूल्य, जैसे-ईमानदारी, सेवा भाव आदि। न्यायिक मूल्य, जैसे-सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता आदि। व्यावसायिक मूल्य, जैसे-जवाबदेही, जिम्मेदारी, सत्यनिष्ठा आदि।

मूल्य एवं अभिवृत्ति के बीच यही समानताएँ हैं- दोनों ही सीखे जाते हैं। दोनों ही प्रायः स्थायी होते हैं। दोनों में ही व्यक्ति के व्यवहार को प्रेरित करने की क्षमता होती है।

मूल्य एवं अभिवृत्ति के बीच यही असमानताएँ-अभिवृत्ति प्रायः मूल्यों से ही उत्पन्न होती है। विशिष्ट परिस्थिति में अभिवृत्ति मूल्य को निर्धारित करती है। मूल्य तथा अभिवृत्ति परस्पर संबंधित हैं, इसलिये मूल्यों में परिवर्तन होने से

अभिवृत्ति भी स्वतः बदलने लगती है। कभी-कभी मूल्यों द्वारा अभिवृत्ति एवं व्यवहार का संबंध निर्धारित होता है। किसी विशेष मूल्य के कारण व्यक्ति का व्यवहार उसकी अभिवृत्ति से असंगत हो सकता है।

युगपुरुष, युगनिर्माता और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन के महानायक थे। महात्मा गाँधी ने स्वंतत्र आन्दोलन के दौरान न केवल उस युग की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि पर विचार किया, वरन् इस युग की हिन्दुस्तानी जाति के गठन और उसके सांस्कृतिक परिवेश के युग पर भी राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि रही है, उससे हिन्दी और उर्दू भाषाओं को नई अर्थवत्ता और युगानुरूप मूल्य प्राप्त हुआ। हिन्दी को युगानुरूप प्रवृत्तियों से जोड़ कर राष्ट्रभाषा का स्थान दिया है।

वह बेहद, सच्चे, खरे, ईमानदार और व्यावहारिक व्यक्ति थे, जो अपने विचारों को जीवन में उतारकर और कसौटी पर परख कर उन पर अमल करवाते थे। आस्थावादी गाँधी जी जीव मात्र को प्रेम करते थे, उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे, इसीलिए उन्हें महात्मा कहा गया। इस आलेख में गाँधी जी के मुख से निकली या लिखी गई ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिन पर-अमल कर मनुष्य का समूचा जीवन ही निर्मल प्रकाश और प्रेरणा से भर जाता है।

इस आलेख में विशेष रूप में महात्मा गाँधी जी की ओर से कही गईं सूक्तियाँ अध्ययन की जाती हैं जिन में संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग किया गया है। महात्मा गाँधी जी की सूक्तियाँ अध्ययन किए जाने के बाद यह सुस्पष्ट हुआ है कि सूक्तियों के बीच संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग में बनी मानवीय मूल्य से संबंधित सूक्तियों की संख्या काफी मात्रा में मिलती है। उदाहरण-स्वरूप :

अनुशासन शारीरिक और मानसिक दो प्रकार के होते हैं और किसी भी व्यक्ति के प्रशिक्षण के लिए ये दोनों ही जरूरी हैं।

यदि कोई मुझसे कहे कि संसार की किसी एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक को चुन लो, तो मैं गीता को ही हाथ लगाऊंगा।

देशभक्ति मनुष्य का पहला गुण है। इसके बिना वह संसार में सिर उठाकर नहीं चल सकता है।

प्रेम एकपक्षीय भी हो तो वहां सर्वांश में दुःख नहीं हो सकता।

प्रेम उभयपक्षीय शक्ति है इसका एकपक्षीय प्रयोग नहीं होता।

माता-पिता की सेवा पुत्र का प्रथम कर्तव्य है।

माता के समान पूजनीय विभूति संसार में दूसरी नहीं होती।

संतान के लिए तो माता-पिता ही प्रथम गुरु और सर्वथा पूज्य हैं।

शिक्षा एक योग है।

जिस शिक्षा या विद्या से त्रिविध-आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक-मुक्ति मिलती है, वही वास्तविक शिक्षा या विद्या है।

असल में शरीर जगत् का एक छोटा-सा नमूना है।

स्वस्थ वही है जो बिना थकान के दिन-भर काफी शारीरिक और मानसिक मेहनत कर सके।

शरीर में अपना और दूसरे का भला किया जा सकता है। पर इसका दुरुपयोग करें तो यह अपने लिए भी बुराई का कारण बनता है और दूसरों का भी काम बिगाड़ता है।

स्वास्थ्य केवल शारीरिक या मानसिक दुरुस्ती को नहीं कहते; जब तक दोनों का संतुलन न हो, मनुष्य स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।

शरीर और मन के बीच इतना घनिष्ठ संबंध है कि दो में से किसी को क्षति पहुंचे, तो सारे शरीर को कष्ट सहन करना पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शुद्ध चरित्र ही स्वास्थ्य की कुंजी है और हम कह सकते हैं कि इससे भिन्न विचार और बुरी वासनाएं तरह-तरह की बीमारियां हैं।

यदि तन और मन दोनों स्वस्थ हुए तभी मनुष्य स्वस्थ कहा जा सकता है।

कोई भी गुण ऐसा नहीं है जिसका लक्ष्य एक ही व्यक्ति की भलाई हो या जिसे एक ही व्यक्ति की भलाई से सन्तोष हो जाए।

महात्मा गाँधी जी की ओर से कही गईं सूक्तियाँ विस्तारपूर्वक अध्ययन किये जाने के फल-स्वरूप यही निष्कर्ष किया जा सकता है।

1. सर्वप्रथम यह कहना आवश्यक है कि मानवीय मूल्यों का अत्यधिक महत्व है। अच्छे मूल्यों वाले लोगों की बड़ी संख्या निश्चित रूप से प्रगति करेगी और जहाँ लोगों में मूल्यों की कमी है, उनकी तुलना में तेजी से विकास होगा। मूल्य हमें एक व्यक्तिगत स्तर पर पोषण करने में मदद करते हैं और हम अपने चरित्र की ताकत से अपने परिवेश को बेहतर बनाने के लिए आगे बढ़ते हैं।

2. मानवीय मूल्य वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इन मूल्यों का एक सामाजिक-सांस्कृतिक आधार या पृष्ठिभूमि होती है, इसीलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें विभिन्नता मिलती है।

3. इस आलेख में भारत के महान नेता महात्मा गाँधी जी की ओर से कही गईं संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग में बनी मानवीय मूल्य से संबंधित सूक्तियाँ भी

अध्ययन की गई हैं। यह स्पष्ट हुआ है कि पूर्ण तथा क्रमसूचक संख्यावाचक शब्दों के प्रयोग में बनी सूक्तियाँ काफी मात्रा में मिलती हैं और वे सूक्तियाँ अनुशासन, गीता, देशभक्ति, प्रेम, माता-पिता, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषयों पर आधारित हैं।

4. गाँधी जी ने भारत के लगभग चालीस वर्ष के नेतृत्व में जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर अपने विचार मौखिक एवं लिखित रूप में प्रकट किए। वे ऐसे युगपुरुष थे कि अपने जमाने के सभी सवालों पर विचार कर उनका कोई न कोई निष्कर्ष निकालते रहे।

5. गाँधी जी जो कुछ बोलते थे, वह बहुत ही संक्षिप्त, सारगर्भित और स्पष्ट होने के कारण ऐसी सूक्तियों के रूप में परिणत हो जाता था, जो हृदय को सहज ही छूती थीं। यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा है, वह मंत्र के समान छोटा-सा और प्रभावकारी सिद्ध होता है।

6. अंत में यह उल्लेख करना भी अति आवश्यक है कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। हिन्दी अत्यंत प्राचीन, उन्नत और श्रेष्ठ भाषा है। हमारी आकांक्षा यह है कि हिन्दी भाषा संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में शामिल हो और इसके लिए भारत की ओर से हो रहे अथक प्रयासों के साथ-साथ उजबेकिस्तान में सक्रिय रूप से हिन्दी के प्रचार-प्रसार कर रहे प्रत्येक हिन्दी प्रेमी, विशेषकर ताश्कंद राजकीय प्राच्य विद्या विश्वविद्यालय के दक्षिणी एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया की भाषाओं के विभाग के अध्यापकगण तथा महात्मा गाँधी भारतविद्या केंद्र के सभी सदस्यगण अपना योगदान देते रहेंगे।

संदर्भ

1. गाँधी जी की सूक्तियाँ, ठाकुर राजबहादुर सिंह (सम्पादक), दिल्ली, 1998
2. भोलानाथ तिवारी-हिन्दी भाषा, इलाहाबाद, 1972
3. अजाद शमातोव-हिन्दी भाषा का प्रामाणिक व्याकरण, ताश्कंद, 2010, उजबेकी में,
4. अजाद शमातोव-दक्षिणी एशिया की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, ताश्कंद, 2003 (उजबेकी में)
5. सरयु प्रसद अग्रवाल, भाषाविज्ञान और हिन्दी, इलाहाबाद, 1997
6. आ. सुप्रुन-संख्यावाचक विशेषण, मास्को, 1992 रूसी में

2. वैश्विक लोकसाहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति

प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर
क.ब.चौ.उ.म. विश्वविद्यालय, जलगाँव

वैश्विक महामारी कोरोना के भीषण उत्पात के बाद इस सार्वजनिक सम्मेलन में उपस्थित आप सभी का हार्दिक स्वागत! 'साहित्य तथा मानवीय मूल्य' पर केंद्रित इस अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में मानवीय मूल्यों के उद्‌भव काल से लेकर वर्तमान समय तक का बहुआयामी मूल्यान्वेषण किया जा रहा है। यह निश्चित ही शैक्षिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में चिंतन एवं चिंतित करानेवाली उपलब्धि सिद्‌ध होगी। बदलते समय के साथ भारतीय तथा वैश्विक जीवनमूल्यों के संदर्भ बदलते जा रहे हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं की लालसाओं ने मानवीय मूल्यों को नए नकाब पहनाने का कार्य आरंभ किया है। इसलिए मिट्‌टी में उगे मानवीय मूल्यों की परिभाषाएँ आज समयानुसार बदल रही है। सांस्कृतिक एवं शैक्षिक सभ्यता के परिचायक ये जीवन मूल्य अपनी जमीनी जड़ों की बुनियादी क्षमता भूल चले हैं। फलतः मानवीय मूल्यों में निहित मिट्‌टी की महक अब क्षीण होती जा रही है।

कभी मिट्‌टी से जन्में इन मानवीय मूल्यों के सभी वटवृक्ष होने चाहिए थे किंतु कुछ ही मूल्यबीज समूचे विश्व में मानवता के वटवृक्ष बन पाए। अनेकों मूल्यहीन अंकुरित भी नहीं हो पाए। कुछ पौधों तक विकसित हुए तो कुछ अविवेक में बोन्साई-से बनकर, मूल्यों के बोधीवृक्ष होने का प्रदर्शन करने लगे।

इस व्याख्यान के माध्यम से समूचे विश्व के लोकनायक, विश्वदीप, महाकारुणिक गौतम बुद्‌ध के लोककेंद्री जीवन संदेशों के कुछ सारगर्भित मानवीय मूल्यों सोदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। बुद्‌ध ऐसे एकमात्र लोकविद्‌ हैं जिन्होंने भारतीय उदात्त जीवनमूल्यों की विश्व के अनेकों देशों तक पहुँचाया। तत्कालीन आशिया खंड की अंतर्राष्ट्रीय लोक भाषा प्राकृत-पाली में दिए गए उनके लोक उद्‌बोधन विराट लोक भी मांगल्यता तथा व्यावहारिकता का उत्कट समन्वय हैं।

बुद्ध भूमि की मिट्टी के मूल्यों की महक सात समंदर पार, विश्व के कोने-कोने तक पहुंचाने में बुद्ध की कालजयी लोकवाणी (लोकवार्ताओं) में एक महत्वपूर्ण हैं धम्मपद! 'धम्मपद' महात्मा बुद्ध की लोकवाणी की कालजयी लोकरचना है, जिसमें मानवीय मूल्यों और लोकव्यवहारों का उत्कट एवं विश्वोपयोगी संदेश है।

''भारतीय बौद्ध दर्शन का कालजयी विश्वकाव्यः धम्मपद''

Dhammapada : An Imortal Porse of Indian Buddhism

आशिया खंड का अविनाशी विश्वग्रंथ बुद्धवचनावली 'धम्मपद'

आज 21वीं शताब्दि में यंत्रवत-सा जीवन जीते, जब हम ढ़ाई-तीन हजार पूर्व की आशियाई संस्कृतियों का विचार करते हैं तब सब से गरिमामयी समताधिष्ठित एवं विज्ञानवादि बौद्ध सभ्यता उभरकर आती है। बौद्ध सभ्यता एवं लोकसंस्कृति भारत ही नहीं अपितु समस्त आशियाखंड में भारतीय बौद्ध दर्शन की दैदिप्यमान कीर्तिपताका रही है। यह बौद्ध कीर्तिपताका ही भारतीय संस्कृति की शिखर ⁄वजा के रूप में विश्वविख्यात हुई। आर्यपूर्व भारतीय श्रमण लोकसंस्कृति मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की सिंधुघाटी बुनियाद भारतीय सभ्यता से विकसित है। बौद्धदर्शन से प्रभावित आशियाई विराट लोकजीवन तथा सभ्यता स्वर्णिम इतिहास के साक्ष्य हैं। महात्मा बुद्ध के लोकोपयोगी समताधिष्ठित वैश्विक तथा मांगलिक संदेशों ने केवल भारत को ही प्रभावित नहीं किया अपितु तत्कालीन समग्र आशिया खंड को झकझोर दिया। मानव तथा मानवता केंद्री जीवनोपयोगी विचारों को प्रत्यक्ष आचरणों द्वारा विराट लोक तक पहुँचाने में महात्मा बुद्ध, उनके वंशज, उत्तराधिकारी तथा भिक्खु गण सफल रहें।

उक्ति और कृति की एकरूपता, वचनों की स्पष्ठता, जीवन की सत्यता, लोककल्याण के प्रति सच्ची समर्पणशीलता, वैराग्यता और लोकोपयोगी विज्ञाननिष्ठता के संदेश बीज सबसे अधिक बौद्ध धर्म ने बीजांकुरित किए, जिसके महाबोधीवृक्ष समस्त आशिया खंड में विद्यमान हुए। बुद्ध संदेशों के अनेक सारगर्भित ग्रंथों में से एक है धम्मपद, जिसने मात्र भारतभूमि में ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों को अपनी सत्यवादि समताधिष्ठित एवं मांगलिक किरणों से आलोकित किया। धम्मपद की विश्वव्यापी लोकोपयोगिता तथा अंतर्गत गरिमा के संदर्भ में प्रसिद्ध अभ्यासक कहते हैं, ''एक पुस्तक को केवल एक पुस्तक के जीवनभर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको धम्मपद से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है। जिसप्रकार महाभारत में भगवतगीता एक छोटी किंतु अमूल्य कृति है, उसीप्रकार त्रिपिटक में धम्मपद एक छोटा किंतु मूल्यवान रत्न है। काल की दृष्टि से भगवतगीता की अपेक्षा धम्मपद प्राचीनतर है। प्राचीन काल में चीनी तिब्बती आदि भाषाओं में इस के अनुवाद हुए हैं। वर्तमान काल में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में- अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच... आदि में कई-कई अनुवाद है।''(1)

विश्वप्रसिद्ध पाली ग्रंथ धम्मपद महात्मा गौतम बुद्ध के लोक उपदेशों का निचोड़ है। बुद्ध महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात भिक्खु संघ के उनके शिष्य अरिहंत⁄अरहंत द्वारा बुद्ध वचनों को तत्कालिन पाली में काव्यबद्ध किया है। इस लोक कार्य में तत्कालिन बौद्ध भिक्षु बुद्धघोष ने बुद्ध उपदेशों के करिबन तीन सौ प्रसंगों को कथाओं के रूप में शब्दबद्ध कराके धम्मपद के गद्य-पद्यमय मौलिक काव्य के रूप में गढ़ा है। फलतः बौद्ध भिक्षु साहित्यकार अरहंत एवं बुद्धघोष विश्वकाव्य धम्मपद के मुख्य निर्माता ठहरे हैं। धम्मपद विश्व का ऐसा महान चंपुकाव्य सिद्ध हुआ है, जो महात्मा बुद्ध की लोकशिक्षा को तत्कालिन संदर्भ काव्य एवं कथाओं को प्रमाणों द्वारा सटिक बनाता है। लोकसाहित्य तथा बौद्धदर्शन के प्रसिद्ध अध्येता अलबर्ट जे.एडमंड इस काव्यग्रंथ की लोकगरिमा एवं विश्व उपयोगिता के संदर्भ में कहते हैं, ''यदि एशिया-खंड में कभी किसी अविनाशी ग्रंथ की रचना हुई है तो धम्मपद ही है। इन पदों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिंतन की आग जलाई है। इन्हीं से अनुप्रणित होकर अनेक चीनी यात्री मंगोलिया के भयानक कांतार और हिमालय की अलंघ्य चोटियों को लाँघकर भगवान के चरणों से पूत भारत भूमि के दर्शनार्थ आए हैं। इन्हीं को महाराज अशोक ने-जिन्होंने प्राणदंड का निषेध किया, गुलामी की प्रथा को कम किया, मनुष्य और जानवरों तक के लिए अस्पताल खोले, शिलालेखों पर अंकित करवाया। आज दो हजार वर्ष से रोम और ईसाइयत की संस्कृति का प्रचार होते रहने पर भी युरोप और अमरिका के सभी विद्या मंदिरों में, कोपेनहेगन से केंब्रिज तक और शिकागों से सेटपिटर्स बर्ग (लेनीनग्राड) तक यह युरोपियन और अमरिकन लोगों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं।''(2)

धम्मपद के संदेश और सत्याधिष्ठित जीवनोपयोगी मार्गदर्शन किसी भी पाठक-श्रोता को प्रभावित किए बिना नहीं रहते। बौद्ध धम्म के मूल ग्रंथ त्रिपिटिक के प्रथम 'सुत्त पिटक' के पाँचवे आयाम 'खुद्दकनिकाय' का यह दूसरा ग्रंथ है। धम्मपद में कुल 423 बुद्ध गाथाएँ है, जो 26 वग्ग⁄वर्गों के अंतर्गत समाविष्ठ है। 1) यमकवग्ग से शुरू धम्मपद में, 2) अप्पमादवग्ग, 3) चित्तवग्ग, 4) पुप्पवग्ग, 5) बालवग्ग, 6) पंडितवग्ग, 7) अरहंतवग्ग, 8) सहस्सवग्ग, 9) पापवग्ग, 10) दंडवग्ग, 11) जरावग्ग, 12) अत्तवग्ग, 13) लोकवग्ग, 14) बुद्धवग्ग, 15) सुखवग्ग, 16) प्रियवग्ग, 17) क्रोधवग्ग, 18) मलवग्ग, 19) धम्मवग्ग, 20) मग्गवग्ग,

21) पकिण्णवग्ग, 22) निरयवग्ग, 23) नागवग्ग, 24) तण्हावग्ग, 25) भिख्खुवग्ग तथा 26) ब्राह्मणवग्ग का अंतर्भाव है। प्रस्तुत हैं इनके कुछ प्रतिनिधि पद....

''न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीधं कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।''

(यमकवग्ग-05, धम्मपद-05)

वैर, वैर से कभी शांत नहीं होता। अवैर से ही वैर शांत होता है। यही संसार का प्राचीन, सनातननियम है।

''न तं मातापिता कयिरा वापिच त्रतका।
सम्मापणि हितं चितं सेच्यसो नं ततो करे।।''

(चित्तवग्ग-11, धम्मपद-043)

न् मातापिता न् दुसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई कर सकते हैं, जितना सन्मार्गपर गया हुआ चित्त करता है।

''फंदनं चचलं चित्तं दुखख दुन्निकवारयं।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं।।''

(चित्तवग्ग-01, धम्मपद-033)

चित्त चंचल है, चपल है, दूर-रक्ष्य है, दूर-निवार्य है। मेधावी पुरुष उसे उसी प्रकार से सीधा करता है, जैसे बाण बनानेवाला बाण को।

''पुत्ताम त्थि धनमत्थि इति बला विहत्रति।
अत्ता ही अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनं।।''

(बालवग्ग-03, धम्मपद-062)

मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है ऐसा सोचकर अज्ञानी व्यक्ति दुख प्राप्त करता है। जब शरीर तक (भी) अपना नहीं है, तो धन और पुत्र कहाँ?

''न हि पापं कतं कम्मं सज्जु सीखं मुच्चति।
डहत बाल मन्वेति भस्मच्छ न्नोव पाव को।।''

(बालवग्ग-12, धम्मपद-071)

ताजे दुध की भांति पाप कर्म फौरन विकार नहीं लाता। वह भस्म से ढकी हुई आग की भांति जलकर मुर्ख आदमी का पीछा करता है।

''सेलो तथा एक धनने वातेनं न समीरति।
एवं निंदापसंसासु न समिजंति पंडिता।।''

(पंडितवग्ग-06, धम्मपद-08)

अडिग और अचल पहाड़ हवा से नहीं हिलता, उसी तरह पंडित निंदा और प्रशंसा से कंपित नहीं होते।

''उय्युजंति सतीमंतो न निकेते स्मंतिते।
हंसा व पल्लल हित्वा ओक मोकं जहान्ति ते।।''

अरहंतवग्गा-02, धम्मपद-091)

उद्यमी व्यक्ति कार्य करते हैं। वे घर में नहीं रहते। जिस तरह हंस क्षुद्र जलाशय छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार उद्यमी भी घर छोड़कर चले जाते हैं।

''सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्यपदं सेस्योयं सुत्वा उपसम्मति।।''

(सहस्सवग्ग-01, धम्मपद-100)

अनर्थकारी पदों से भरे सहस्त्र वाणियों से एक उपयोगी पद सर्वश्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है

''पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदाच पच्चति पापं, अथ पापो पापानि पस्सति।।''

(पापवग्ग-04, धम्मपद-119)

जब तक पाप फल नहीं देता तब तक पापी को अच्छा लगता है। जब पापफल उभरते लगता है तो उसे बुरा लगता है।

वैश्विक मानव जीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक समाधानः 'धम्मपद' :

प्राचीन काल से ही, कि बहुना मानवमन में आशा आकांक्षा तथा सुख भोगेच्छाओं का निर्माण होने से लेकर आज तक समुचा जीवन समस्याग्रस्त बनता जा रहा है। भांति-भांति की सुखेच्छाओं ने मनुष मात्र को सुखी नहीं बल्कि दुखी-कष्ठी बना दिया है। दुनिया भर के सुख पाकर भी सुखभोगी की लालसाएँ शांत होने की बजाय अधिकाधिक प्रक्षुभित हो रही है। इन लालसापूर्ति की होड़ में जीवन अशांत वैफल्य ग्रस्त, भ्रष्ठ एवं ईर्षामयी बनते जा रहा है। बुद्ध वचनों की शिक्षा, जो धम्मपदों में निहित है, हजारो वर्षों से लेकर आज तक जीवन की इन विडंबनाओं का निराकरण कर रही है। वैश्विक मानव के समस्त समस्याओं का यथोचित सम्यक निरूपण जितना धम्मपद सत्य की ठोस धरातल पर करता है, उतना अन्य कोई नहीं कर सकता। फलतः विश्वशांति, संतुष्ठि, सदाचार, सच्चे सुख की प्राप्ति एवं मानवकल्याण हेतु धम्मपद का अंधकारमय मानवी जीवन का अक्षय आलोक स्तंभ है। पाली धम्मपद के प्रसिद्ध हिंदी अनुवादक भिक्खु रतनज्योति, स्थविर इस संदर्भ में दावे के साथ कहते हैं, ''विश्व में मानव जाति के सम्यक रूप में जीवन यापन करने तथा अंतिम सुख निब्बान की मंजिल पर पहुँचाने के संदर्भ में समयानुसार बहुत से मार्गदर्शक आए। किंतु कोई भी मार्गदर्शक ऐसा सम्यक मार्ग नहीं दे सका जो प्राणी मात्र के हृदय की आवाज़ हो।

सार्वजनिक हो एवं उसकी धार्मिक मान्यताएँ अन्य प्राणियों के लिए दुख का कारण नू हो। वास्तव में धम्मपद मानव जीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक रूप से समाधान करता है, यदि इन शिक्षाओं को व्यक्ति गंभीरतापूर्वक अपने आचरण में लाए। बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका आदि देशों में यह परंपरा है कि आवश्यक ज्ञान के लिए अन्य ज्ञान के साथ-साथ धम्मपद का कंठस्थ होना अत्यंत आवश्यक है। इसी से पता चलता है कि धम्मपद नामक ग्रंथ आकार में छोटा होते हुए भी कितना महत्वपूर्ण हैं।''(3)

प्राचीन और आधुनिक विश्व साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय, विवेकनिष्ठ जीवनोपयोगी एवं अनुदित यदि कोई कृति हुई है, तो वह धम्मपद ही है। देश-विदेश के विविध अभ्यासकों, भाषाविदों, साहित्यकारों तथा दार्शनिकों ने धम्मपद के सैंकडों अनुवाद अपनी-अपनी भाषाओं में कराके, बुद्‌ध वचनावली को अपनाकर जीवन को सही अर्थों में सुखी कराने का प्रयास किया है। प्रसिद्‌ध दार्शनिक तथा अंतर्राष्ट्रिय चित्रकार सर शांतिस्वरूप बौद्‌ध धम्मपद की गरिमा के संदर्भ में कहते हैं, ''धम्मपद बौद्‌ध त्रिपिटिक साहित्य का बहुत प्रसिद्‌ध और लोकप्रिय ग्रंथ है। एक अनूठा कीर्तिमान भी धम्मपद के नाम के साथ जुड़ा है कि इस पुस्तक का अनुवाद संसार की सबसे अधिक भाषाओं में हुआ है। संसार की भाषाएँ ही क्यू? भारतीय भाषाओं में से अकेली हिंदी भाषा में ही सैंकडों विद्‌वानों द्‌वारा उसका अनुवाद किया जा चुका है। इस ग्रंथ की शिक्षाओं की लोकप्रियता का प्रमाण इस बात से भी मिल जाता है कि गुरू रविंद्रनाथ टैगोर को उनकी जिस गितांजली पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था, वह रचना भी धम्मपद को प्रभाव से अछुती नहीं रह सकी।''(4)

प्रस्तुत है धम्मपद के जीवनोपयोगी कुछ मौलिक संदेश...

''सब्बे तसंति दंडस्स सब्बे सं जीवितं पियं।
अज्ञानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातेय।।'' (दंडवग्ग-002, धम्मपद-130)

सभीं दंड से घबराते हैं, सभीं को जीवन प्रिय होता है। इसलिए सभी खुद के समान औरो को भी समझे और किसी को भी नू मारे और नू मरवाये।

''यथा दंडेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेंति पाणिनं।।'' (दंडवग्ग-007, धम्मपद-135)

ग्वाला/चरवाहा जिसप्रकार डंडे से गायों को चरागाह में ले जाता है ठीक उसी भांति बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हाँकते ले जाते हैं।

''न नग्गचरिया न जटा पंका, नानासका थंडिल साचिका वा।
रज्जोच जल्ल उक्कुटिपधान सोधेंति मच्च अवितिण्ण कणखं।।'' (दंडवग्ग-013, धम्मपद-141)

आदमी की शुद्‌धि के लिए नंगा रहना, जटा धारण करना, शरिर को कीचड लपेटना, उपवास रखना,कडी जगह पर सोना, धूल लपेटना तथा उकडू बैठना कोई मायने नहीं रखते, यदि उसका मन ही संदेही हो।

''अठ्ठीनं नगरं कतं मंसलोहित लेपनं।
यत्थ जरा च मच्चूच मानो मक्खोच ओहितो।।'' (जरावग्ग-005, धम्मपद-150)

मनुष्य का शरिर मूलतः हड्डियों का एक नगर बनाया गया है। इसे मांस तथा रक्त से लिपा गया है। इस में बुढापा, मृत्यु, अभिमान ढाह छिपे हुए हैं।

''अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्‌धा योब्बने धनं।
जिण्णकोंचाव झायन्ति खीणमच्छेव पल्लले।।'' (जरावग्ग-010, धम्मपद-155)

जो जीवन में ब्रह्मचर्यपालन नहीं करते, या पालन नहीं किया और जिन्होंने यौवनावस्था में धन नहीं कमाया, उनकी अवस्था उसी क्रौंच पक्षी की भांति होती है, जो बिना मछली वाले तालाब में ध्यान लगाकर बैठते है।

''यस्यच्यन्त दुस्सील्य मालुवा सालमिवोततं।
करोति सो यथत्तानं यथानं इच्छति दिसो।।'' (अत्तवग्ग-006, धम्मपद-162)

जिस व्यक्ति का दूराचार शाल वृक्ष पर फैली मालुआ लता की भांति फैला हुआ है, वह खुद के लिए वही सब करता है, जैसे (जो) उसके शत्रुओं की इच्छा होती है।

''यस्स पापं कतं कम्मं कु सलेन पिथीयति।
सोमं लोकं पभासेति अन्भा मुत्तोवचंदिभा।।'' (लोकवग्ग-006, धम्मपद-173)

जो अपने किए गये पापकर्म को कुशल कर्म से ढँक देता है, वह बादल से मुक्त चंद्र की भांति इस लोकको प्रकाशित करता है।

''सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्‌धान सासनं।।'' (बुद्‌धवग्ग-015, धम्मपद-183)

सब पापों का नू करना, शुभ कर्मों का करना, चित्त को परिशुद्‌ध रखना यही बुद्‌ध की शिक्षा है।

''नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खधासमा दुकखा, नत्थि संतिपरं सुखं।।'' (बालवग्ग-006, धम्मपद-202)

राग के समान अग्नि नही, द्‌वेष के समान मल नहीं। पाँच स्कंधों के समुदाय समान दुःख नहीं। शांति से बढ़कर सुख नहीं।

''सीलदस्सन संपन्न धम्मट्‌ठे सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरूते पियं।।'' (पियवग्ग-009, धम्मपद-217)

जो शीलवान है, जो विद्‌वान है, जो धर्म में स्थित है, जो सत्यवादि है, जो अपने काम को करता है, करनेवाला है ऐसे व्यक्ति को ही लोग प्यार कहते हैं।

त्रिपिटिक का विशाल जीवनज्ञानसागर धम्मपद के घड़े में समाहित :

भारतीय बौद्ध ग्रंथों में धम्मपद का स्थान मौलिक है। त्रिपिटिक के अनेकानेक विशाल ग्रंथों का निचोड मानो धम्मपद में हुआ हो। करिबन इकतीस बृहत ग्रंथों की जीवनोपयोगी फलश्रृति अधिकांशतः धम्मपद में देखी जाती है। फलतः अनेको दार्शनिकों तथा साहित्यकारों ने धम्मपद को धम्मसार का वह घड़ा सिद्ध किया है, जो त्रिपिटिक के विशाल ज्ञानसागर से भरा हुआ है। इसमें निहित पदावली मानवी जीवन का सही दिशा दिग्दर्शन कराती है। बुद्धि, तर्क, प्रसंग तथा लोकजीवन की विशाल धरती के सक्षम प्रमाण इस ग्रंथ की विशेषताएँ है। फलतः धम्मपद विराट लोकजीवन के साथ-साथ आधुनिकता की जीवन शैलियों को भी अनेकानेक आधार प्रदान कराता है, जो कालोपयोगी एवं प्रासंगिक भी है। धम्मपदों की यही कालोपयोगिता एवं प्रासंगिकता उसे कालजयी बनाती है। धम्मपदों की विशेष जीवन उपलब्धियों पर भाष्य करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. धर्मकीर्ति कहते हैं, ''दार्शनिक दृष्टि से मैं धम्मपद को पूर्ण ग्रंथ की श्रेणी में रखता हूँ। यदि धम्मपद की तुलना वेदों, उपनिषदों, महाभारत, गीता, कुराण मजीद एवं बाईबल से की जाए, तो यह ग्रंथ प्रत्येक दृष्टि में उनसे भारी पड़ता है। इस ग्रंथ का सुक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो इस में मनोविज्ञान, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का अवलोकन किया जा सकता है। यथार्थ में नीतिशास्त्र का यह बेजोड ग्रंथ है। इस ग्रंथ के नीतिशास्त्र के सामने कांट एवं कृष्ण का नीतिशास्त्र बौना दिखाई देता है। मैं इस बात को निश्चित एवं निरपेक्ष रूप से कह सकता हूँ कि विश्व की विकसित संस्कृति एवं सभ्यता में इसप्रकार का महत्वपूर्ण ग्रंथ न लिखा गया है और न लिखा जाएगा 'न् भूतो न भविष्यति' वाली कहावत इसपर खरी उतरती है।''(5)

धम्मपद नामक यह मौलिक तथा कालजयी लोकोपयोगी काव्य ग्रंथ हर युग की भीषण समस्याओं का सहज सुलभ निराकरण का सत्यान्वेषि मार्ग है। मनुष्य की बर्बरता को नियंत्रित कराके उन्हें प्रज्ञा, शील, करुणा तथा सदाचार के मार्ग पर लाने में धम्मपद प्रभावकारी भूमिका निभाता है। इसीलिए धम्मपद का अध्ययन तथा तद्नुसार जीवनाचरण यदि होता है तो भारत ही नहीं अपितु विश्व बुद्ध के सन्मार्ग से पूनः दीव्यालोकित हुए बिना नहीं रहेगा। इसी मौलिक सत्य को प्रमाणित करते हुए आशिया के प्रसिद्ध विद्वान कहते हैं, ''All these characteristics are featured in the Dhammapada, one of the thirty one books that comprise the Tripitika, the three Baskets, which contain the quintessence of the Buddha's Teaching. The Dhammapada is

not a book to be read superficially like novel and shelved aside. It should be read and re-read so that it may serve or constant companion for inspiration, solace and edification in times of needs".(6)

भारत ही नहीं अपितु विश्व के विवेक को तथा मानवतापूर्ण आचरण को सही अर्थ में जाग्रत करानेवाले धम्मपद यह मात्र काव्य रूप नहीं है बल्कि समस्त जीवन को समृद्ध कराने की सक्षम शैली है। प्रस्तुत है धम्मपदों की कुछ गरिमामयी पंक्तियाँ...

''वचीपकोपं रक्खेय वाचाय संवुतो सिया।
वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे।।'' (क्रोधवग्ग-012, धम्मपद-232)

वाणी की चंचलता से बचे। वाणी का संयम रखे। वाणी का दुश्चरित्र छोड़कर उसका सदाचरण करे।

''सुदस्यं वज्जमत्रेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुगाति यथा भुसं।
अत्तनो पन छादेति कलि व कितवा सठो।।'' (मलवग्ग-018, धम्मपद-252)

दुसरों के दोष देखना आसान है, किंतु अपने दोष देखना बडा कठीण। आदमी दुसरों के दोषों को भुस की भांति उडाता है किंतु अपने दोषों को ऐसे ढँकता है, जैसे बेईमान जुँवारी पासे को।

''सब्बे संगरवारा दुक्खा, ति यदा पत्रय पस्सति।
अथ निब्बिदंते दुक्खे एस मग्गो विसुसिद्धया।।'' (मग्गवग्ग-006, धम्मपद-278)

सभी संस्कार दुख है। जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है तभी उसे संसार से विराग पैदा होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

''दूरे संतो पकासेंति हिमवंतोव पब्बता।
असंतेत्थ न दिस्तन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा।।'' (पकिण्णकवग्ग-015, धम्मपद-304)

सत्पुरुष हिमालय पर्वत की तरह दूर से ही प्रकाशित होते है, असत्पुरुष रात में फेंके बाण की तरह दिखाई नहीं देते।

''अलाज्जिताये लज्जंति लज्जिताए न् लज्जरे।
मिच्छादिट्ठि समादाना सत्ता गच्छंति दुग्गति।।'' (निरयवग्ग-011, धम्मपद-316)

अलज्जा के काम में जो लज्जा करते हैं, और लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते ऐसी झूठी धारणावाले प्राणी दूर्गति को प्राप्त होते हैं।

''सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामणंता लोके अथो ब्रह्मणंता सुखा।।'' (नागवग्ग-013, धम्मपद-332)

संसार में माता-पिता (दोनों की) सेवा सुखकर है। साथ ही संसार में श्रमणत्व

(संन्यास) सुखकर है, और सुखकर है निष्पाप (ब्रह्मणत्व) होना।

"मनुजस्स पत्रत्तचारिनो तन्हा बड्ढति मालुवा विय।
से फलवती हूराहूंर फलमिच्छं व वनास्मि वानरो।।"

(तण्हावग्ग-001, धम्मपद-334)

प्रमादी मनुष्य की तृष्णा मालुंवा लता की भांति बढ़ती जाती है। फल की इच्छा करता हुआ वह बन में वानर की तरह दिनोंदिन भटकते रहता है।

"यो निब्बनयो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावती।
तं पुग्गलमेव पस्सव मुत्तो बंधनमेव धावति।।"

(तण्हावग्ग-011, धम्मपद-344)

जो निर्वाणार्थी तृष्णा से मुक्त हो, अच्छी तरह से मुक्त होकर भी तृष्णा की ही और दौडता है, उस व्यक्ति को ऐसा समझो जैसे कोई बंधन से मुक्त होकर फिर बंधन कि ओर भागता हो।

"चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिहव वाय संवरो।।"

(भिक्खुवग्ग-001, धम्मपद-360)

आँख का संयम (करना) अच्छा है। कान का संयम अच्छा है। नाक का संयम अच्छा है और जिह्वा का संयम भी अच्छा है।

"हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्ब योगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।"

(ब्राह्मणवग्ग-035, धम्मपद-417)

जिसने मानवी भोगो को छोड दिया है, दिव्य भोगों को भी जिसने त्याग दिया है तथा सभीं भोगो के प्रति जो अनासक्त है, उसे मैं (बुद्‌ध) ब्राह्मण कहता हूँ।

निष्कर्ष

1) बौद्‌धम्म और दर्शन की त्यागमयी कीर्ति पताका ही भारतीय संस्कृति की शिखर/वजा
2) भारतीय बुनियादी बौद्‌ध लोक संस्कृति से समस्त आशियाई लोकजीवन प्रभावित
3) महात्मा बुद्‌ध के सत्यान्वेषि, मांगलिक एवं वैश्विक लोकसंदेशों के पाठ : धम्मपद
4) बौद्‌ध साहित्य सागर का अनमोल रत्न : विश्वकाव्य 'धम्मपद'

5) सुत्तपिटक के पाँचवे अध्याय खुद्‌दकनिकाय का दुसरा काव्यग्रंथ : धम्मपद
6) भारतीय तथा विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में प्रचारित प्रसारीत एवं अनूदित : धम्मपद
7) महात्मा बुद्‌ध महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात अरहंत तथा बुद्‌धोष द्‌वारा धम्मपद की निर्मिति
8) आशिया खंड का सर्वाधिक लोकप्रिय एवं अविनाशी लोकग्रंथ : धम्मपद
9) धम्मपद की पदावली तत्कालिन शिलालेख, भिक्खुसंघ एवं लोककंठ में सुरक्षित
10) धम्मपद में कुल 423 बुद्‌ध गाथाएँ/संदेश, जो 26 वर्गों में विभाजित
11) त्रिपिटक के विशाल जीवनज्ञानसागर का निचोड : 'धम्मपद' का घड़ा
12) नीतिशास्त्र का बेजोड़ वैश्विक ग्रंथ : धम्मपद, जो वेद, गीता, कुराण, बाईबल से भारी
13) वैश्विक मानवजीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक समाधान : धम्मपद
14) सब पापों से दूर रहना, शुभ कर्म करके, चित्त शुद्‌ध रचना : यही बुद्‌ध लोक शिक्षा
15) मनुष्य की बर्बरता नष्ठ कराते और मनुष्य को सदाचरण पर लाते : धम्मपद के पाठ

संदर्भ

1) दो शब्द (भूमिका) मूलगंधकुटी विहार (सारनाथ, दि.24/05/1938) धम्मपद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन, बुद्‌धभूमि प्रकाशन, नागपुर (छटा संस्करण, सन 1993, B.E.2537, C.E.1993)
2) पृष्ठसंख्या-007, धम्मपद, डॉ.भदंत आनंद कौसल्यायन, बुद्‌धभूमि प्रकाशन, नागपुर (छटा संस्करण, सन 1993, B.E.2537, C.E.1993)
3) मंगल कामना, धम्मपद (बुद्‌ध वचनावली), डॉ.महीपाल सिंह 'महीप', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली (द्‌वितीय संस्करण सन 2003, बुद्‌धाब्ध-2547)
4) प्रकाशकीय-सर शांति स्वरूप बौद्‌ध, धम्मपद (बुद्‌ध वचनावली)- डॉ.महीपाल सिंह 'महीप', सम्यकप्रकाशन, नई दिल्ली (द्‌वितीय संस्करण सन 2003, बुद्‌धाब्ध-2547)
5) पुरोवाक-डॉ. धर्मकीर्ति (26 जनवरी 2004 में लिखित), धम्मपद- (बुद्‌ध वचनावली), डॉ. महीपाल सिंह 'महीप', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली (द्‌वितीय संस्करण सन 2003, बुद्‌धाब्ध-2547)

6) Preface, (Vajirarama, Colombo, 5, 9th May 1971) The Dhammapada- Narada Thera, The Corporate Body of Buddha Educational Foundation, Taipei, Taiwan R.O.C. (Fourth Edition 2538-1993)
7) साक्षात्कार (दूरध्वनि द्वारा) प्रो.डॉ.तुलसा डोंगरे, पाली-प्राकृत बौद्ध विद्या विभाग, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज विश्वविद्यालय, नागपुर, (दि.7 मई 2020, बुद्ध जयंति)

3. भक्तिकाल के आलोक में महात्मा बसवेश्वर के साहित्य की प्रासंगिकता का अनुशीलन

डॉ. संतोषकुमार गाजले
हिन्दी विभागाध्यक्ष,
लो. बा. अने महिला महाविद्यालय, यवतमाल

साहित्य का मूल उत्स जीवन है और इसी तथ्य के प्रकाश में कहा जा सकता है कि साहित्य मानव-जीवन की एक महानतम उपलब्धि रही है। जो देश काल और वातावरण विशेष में जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य के केंद्र में मानवी जीवन और मानवी समाज है, यही कारण है कि जनता और समाज की चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है। साहित्यकार युगीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक परिस्थिति के अनुरूप भावों का उद्बोधन, प्रकाशन और संचयन करते हुए अपने विचारों, भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए आगे बढ़ता है। जो इस बात का प्रमाण है कि किसी भी युग का कोई भी रचनाकार न तो समकालीन परिस्थितियों से पूर्णतः मुँह मोड न जी सकता है और न ही उसकी सर्वथा उपेक्षा ही कर सकता है। इसी तथ्य को लक्ष्य कर, हम यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि साहित्य पूर्णतः सामाजिक वस्तु है। अतः उसमें शाश्वत सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है, जो सदा प्रासंगिक बनी रहती है।

हमारी स्पष्ट धारणा है कि साहित्य की प्रासंगिकता दो दृष्टि से विचार्य है। 1) किसी भी काल या युग का, किसी भी विधा का साहित्य क्यों न हो, यदि वह वास्तविक साहित्य है? तो वह शुद्ध साहित्य के रूप में सदा प्रासंगिक रहेगा, पठनीय रहेगा। 2) जिस साहित्य में समाज के शाश्वत मानवीय मूल्यों का प्रतीकीकरण होगा वह साहित्य समाज के लिए सदैव उपादेय सिध्द होगा, जो कि साहित्य के प्रासंगिकता की पहली शर्त है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो

प्रांसगिक साहित्य की परिधि काफी विस्तृत और व्यापक होगी। इस सन्दर्भ में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के विचार अत्यंत मार्गदर्शक सिध्द हो सकते हैं। जो साहित्य की प्रांसगिकता की कसौटी उसकी उपादेयता को मानते हैं। वे कहते हैं, ''कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे कि होती है। जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, अध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत् हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।''[1] इसी के समकक्ष सामाजिक, वैचारिक और साहित्यिक धारणाओं ने साहित्य के विशेष सन्दर्भों में प्रासंगिकता का अन्वेषण करने की प्रवृत्ति को प्रेरित किया है. जहाँ प्रासंगिकता शब्द अपने कोशगत अर्थ से अधिक व्यापक और पारिभाषिक अर्थ से सम्पृक्त दिखाई देता है। अलोच्य विषय की आवश्यकता के अनुसार साहित्य विशेष के सन्दर्भ में प्रासंगिकता शब्द पर विचार करना आवश्यक प्रतीत हुआ है।

प्रासंगिकता का अर्थ

''जो विशिष्ट प्रसंग से पूर्णतः सम्बध्द हो उसे प्रासंगिक कहा जाता है।''[2] तो वी.एन. फिलिप के मतानुसार ''वर्तमान सन्दर्भ में अतीत की जाँच अथवा उसके मूल्यों की पहचान को प्रासंगिकता कह सकते हैं।''[3] विद्वानों के उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रासंगिकता से तात्पर्य ऐसी स्थितियों अथवा सन्दर्भों से है, जो काल की दीवारों को लाँघकर निर्विकल्प सत्य की भाँति सदा-सर्वदा प्रमाण बनी रहती हैं. यही कारण रहा है कि प्रांसगिकता का प्रयोग अक्सर ऐसे तथ्यों अथवा सन्दर्भों के लिए किया जाता है, जो हर युगीन परिस्थितियों मे उपादेय सिध्द होती हैं। इसी तथ्य को लक्षित कर साहित्य के सन्दर्भ में परम्परा, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि से जब साहित्य का मूल्यांकन या निर्धारण किया जाता है, तो वह प्रकारांतर से साहित्य की प्रासंगिकता का ही निर्धारण है या इसे ही साहित्य की प्रासंगिकता कहा जाता है. साहित्यकार जब एक त्रिकालदर्शी के रूप में कर्मरत होता है, तब उसका वर्तमान जीवन और वैचारिकता तद्युगीन मानवीय समस्याओं तथा युगीन आवश्यकताओं से जुड़कर प्रासंगिक बनता है। तब वह साहित्यकार और उसकी रचनाएँ देश, काल सीमाओं को लांघकर आगे बढ़ती हैं और प्रासंगिक बनकर कालजयी बनती हैं।

सामाजिक मूल्य मनुष्यजाति की वह अमूल्य निधि है, जिसकी नींव पर हमारी

सभ्यता और संस्कृति का भवन खड़ा है। किसी भी साहित्य या साहित्यकार की प्रासंगिकता की सार्थकता उसके मानव मूल्यों से सम्बद्धता पर निर्भर है। सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करनेवाला साहित्य कभी प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। अस्तु, कहा जा सकता है कि किसी साहित्य की प्रासंगिकता की सार्थकता उसकी आधुनिक सन्दर्भों में उसका प्रयोजन और उपयोग के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों के प्रति उनकी सम्बध्दता पर निर्भर होती है। इस दृष्टि से महात्मा बसवेश्वर का साहित्य वर्तमान की विषम परिस्थितियों से समाज को मुक्त करने तथा आज के दिग्भ्रमित समाज का पथप्रदर्शन करने में कितना सहायक एवं उपोदय सिध्द हो सकता है, इसी का अन्वेषण करना और उनके विचारों की स्वयंसिध्द प्रासंगिकता को और अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करना ही विवेच्य विषय का प्रधान उद्देश्य रहा है। इसी कारण यहाँ महात्मा बसवेश्वर के विचारों में निहित प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। महात्मा बसवेश्वर का अंतर्मन लोकमंगल की भावना से आपूरित था। अतः इनके विचारों की प्रासंगिकता को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर आकलित किया जा सकता है. जो इस प्रकार है :

1) व्यक्तिगत क्षेत्र में

व्यष्टि से समाष्टि की परिकल्पना सार्थक होती है। अर्थात् व्यक्ति ही समाज का केन्द्रबिन्दु है। यही कारण रहा है कि बसव व्यक्तिगत शुध्दाचरण के द्वारा सामाजिक शुध्दाचरण को साकार करना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि महात्मा बसवेश्वर का चिंतन व्यक्ति के सम्मुख सही जीवनदर्शों को प्रस्तुत कर, उन्हें सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना रहा है। अस्तु हम देखते हैं कि बसवण्णा के विचार सैकडों वर्ष बाद भी मनुष्यजाति के लिए मार्गदर्शक और अनुकरणीय सिध्द होते हैं।

मनुष्यजाति का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मानव समाज को विभिन्न युगों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडा है. जिसके प्रमुखतः दो प्रकार हैं- 1) प्राकृतिक समस्याएँ और 2) मानव निर्मित समस्याएँ। प्रथम प्रकार की समस्याएँ तो मानव शक्ति से परे हैं, जिन्हें न तो नियंत्रित किया जा सकता है और न ही इससे बचने के समुचित, सफल साधनों का अविष्कार करने में हम आज तक सफल हो सकें हैं। फिर भी संतोष की बात यह है कि इस प्रकार की प्राकृतिक समस्याओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है। जबकि दूसरे वर्ग की समस्याएँ पूर्णतः मानवनिर्मित हैं। जिन्हें हम नियंत्रित करने के साथ-साथ उनसे बचने के समुचित साधनों का निर्माण करने में भी समर्थ हैं. फिर भी यह बड़े आश्चर्य की

बात है कि प्राकृतिक समस्याओं की अपेक्षा मानवनिर्मित समस्याओं से ही मानव समाज सबसे ज्यादा आक्रांत और त्रस्त है। हमें इस तथ्य को स्वीकारने में कदापि संकोच नहीं होना चाहिए, कि मनुष्य ने ही हर युग के समाज को समस्याओं की खाई में ढकेला है। उसे प्रताड़ित किया है। व्यक्ति की स्वार्थांधता ने समाज के लिए हमेशा अभिशाप का कार्य किया है। यही कारण रहा है कि विभिन्न युगों में अवतरीत महामानवों ने इस प्रकार की समस्याओं से समाज को मुक्त करने की दिशा में सार्थक चेष्टा की है। जिनमें महात्मा बसवेश्वर का नाम प्रथम पंक्ति में आता है।

जिस प्रकार से समाज के केन्द्र में व्यक्ति है, ठीक उसी प्रकार से सामाजिक समस्याओं के केन्द्र में भी व्यक्ति ही है। फलतः हम पाते है कि बसवण्णा व्यक्तिगत शुध्दाचरण के द्वारा समाज के चरमराते हुए ढाँचे को सँवारने तथा उसका भविष्य सुनिश्चित करने की दिशा में संलग्न रहें हैं। बसव ने व्यक्ति को केन्द्र में रखकर जो चिंतन किया है, वह अत्यंत व्यावहारिक तथा सार्वकलिक सिद्ध हुआ है। उन्होंने युगीन व्यक्ति को समझने की अपेक्षा व्यक्ति की मूलभूत प्रवृत्तियों को समझने पर लक्ष्य केन्द्रित किया है। फल-स्वरूप सैकडों सालों के पश्चात् भी उनके विचार हमारे व्यक्तिगत जीवन में मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। जिसका सोदाहरण विवेचन करना शोध-विषय की परमावश्यकता रही है, अस्तु, हमने कुछ उदाहरणों के द्वारा महात्मा बसवेश्वर के विचारों की व्यक्तिगत जीवन के सन्दर्भ में प्रासंगिकता को विश्लेषित करने का सफल प्रयास किया है।

बसव अपने दार्शनिक विचारों को एक विशिष्ट धर्म के रूप में साकार करना चाहते थे, अस्तु, उन्हें व्यक्ति को केन्द्र में रखकर चिंतन करने की आवश्यकता महसूस हुई है। इसी का परिणाम है कि बसवण्णा के विचार अन्यान्य क्षेत्रों के साथ-साथ हमारे व्यक्तिगत जीवन में भी मार्गदर्शक एवं उपादेय सिध्द होते हैं। महात्मा बसवेश्वर का समग्र चिंतन आचरणगत है, जिसकी यात्रा चिंतन से आचरण में और आचरण से अभिव्यक्ति में हुई है। आचरण और अनुभव को प्रमाण मानते हैं, जिस कारण इनके विचारों में एक प्रकार की व्यवहार्यता दिखाई देती है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। बसवण्णा नैतिक मूल्यों को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए बेहद महत्वपूर्ण मानते हैं नैतिकतापूर्ण आचरण और समाजोपयोगी जीवन-यापन पध्दति बसव के विचारों का केन्द्रीय पक्ष रहा है। बसव युग में समाज पूर्णतः भ्रष्ट हो चुका था। जहाँ अनैतिकतापूर्ण आचरण को धर्म का जामा पहनाकर कुत्सित भावनाओं की तृप्ति की कोशिशें तेज हो चुकी थी। जिसकी जड़े भ्रष्ट व्यक्तिगत जीवन में थी। जिन्हें देखकर बसवण्णा जैसे

क्रांतिकारी का भडक उठना सहज स्वाभाविक था और हुआ भी यही। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के लिए तथा व्यक्ति के जीवन को निरापद करने के उद्देश्य से व्यक्तिगत जीवन, विचार और आचरण की शुध्दता पर जोर दिया है। बसव की स्पष्ट धारणा थी कि जब तक व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को सभी प्रकार की बुराइयों और कुरीतियों से मुक्त नहीं किया जाता तब तक समाज सुधार और धर्म सुधार के सभी उपचार निरर्थक हैं। निष्फल हैं। फलतः उन्होंने व्यक्तिगत जीवन के द्वारा, व्यक्ति से जुड़े हुए सभी क्षेत्रों तथा आचरण पध्दतियों को स्वस्थ रूप प्रदान करने की सार्थक चेष्टा की है।

बसवण्णा की धारणा रही है कि विषयों का त्याग, कथनी और करनी में एकता, इन्द्रियों पर संयम, समता, लोभवृत्ति का विसर्जन, क्रोध तथा मोह का निराकरण और सत्याचरण आदि के द्वारा ही व्यक्ति की आत्मिक उन्नति संभव है। जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को स्वस्थ रूप प्रदान करने के लिए भी परमावश्यक है। बसवण्णा के विचार हमारे व्यक्तिगत जीवन को स्वस्थ रूप प्रदान करने और हमारी सर्वांगीण उन्नति में बेहद निर्णायक सिध्द हो सकते हैं। इस तथ्य को और अधिक रूप से स्पष्ट करने के लिए बसव के निम्नांकित विचारों को उधृत किया जा सकता है। जो व्यक्तिगत क्षेत्र में मार्गदर्शक भी हैं और प्रासंगिक भी-

इन्द्रियों को नियंत्रित करने पर जोर :

''सभी इन्द्रियों में विकृत होनेवाले मन को
नियंत्रित करनेवाला ही सुखी है।
पंचेंद्रियों की इच्छा में तुच्छ मन से भ्रमण करनेवाला ही दुखी है।
मन अंतरमुखी हो तो अविरल ज्ञानी है।
मन बहिरमुखी हो तो माया प्रपंच में डूबा हुआ देखो रे।।''[4]

ढोंगी आचरण का खंडन :

''अंग-सुख के लिए मद्य-माँस खाते हैं,
नयन-सुख के लिए पर वधू पर दृष्टि डालते हैं,
लिंग-पथ पर न चलनेवाले
लिंगधारण करें तो क्या लाभ होगा?
जंगम ही दोषी ठहराए जाये तो
मृत्यु से बचना असम्भव है
कूडलसंगमदेव।।''[5]

सत्संग पर जोर :

''सज्जनों का सत्संग कीजिए,

दूर्जनों से दूर रहिए
साँप कोई भी हो, विष-विष ही है,
इनकी संगत में न पडिए।
अंतरंग-शुध्दि-हीनों का संग
कालकूट विष है कूडलसंगमदेव?''[5]
हिंसा का विरोध :
''त्यौहार के लिए मनौती का बकरा
बंदनबार के पत्ते खा रहा है
उसे पता नहीं कि वे उसे मार डालेंगे
वह अपना पेट भरने में लगा है
पैदा हुआ था, मरेगा
परंतु क्या हत्यारा बचेगा, कूडलसंगमदेव?''[6]
अंतरंग शुध्दि और बहिरंग शुध्दि पर जोर :
''चोरी मत करो, मत करो हत्या, मत बोलो झूठ
मत करो क्रोध, मत बनो असहनीय दूसरों के लिए
मत करो अपनी तारीफ, मत निंदा करो दूसरों की
यही है अंतरंग शुध्दि, यही है बहिरंग शुध्दि
यही है हमारे कूडलसंगमदेव को प्रसन्न करने की रीति।।''[7]

इस प्रकार बसवण्णा ने विभिन्न सन्दर्भों में अपने मौलिक विचारों की सहायता से समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए चिंतन तथा आचरण सूत्र सौंपे हैं. जो व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्षेत्र में मार्गदर्शक और प्रासंगिक सिध्द होते हैं। जिनका अनुकरण अथवा पालन कर, व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन को निरापद कर सकता है। और सर्वांगीण उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

2) पारिवारिक क्षेत्र में

व्यक्ति के जीवन में परिवार का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना कि समाज का. या यूँ कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को संस्कारित करने का कार्य परिवार करता है, तो उसे पूर्णता प्रदान करने का कार्य समाज करता है। अतएव विभिन्न विद्वानों ने परिवार को केन्द्र में रखकर गहन चिंतन किया है, जिनके चिंतन के मंथन से निकले हुए नवनीत रूपी विचार आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक हैं, जिनमें अग्रणी नाम महात्मा बसवेश्वर का है। जिन्होंने व्यक्ति के

जीवन में परिवार की महत्ता को भली-भाँती समझकर उसे स्वस्थ रूप प्रदान करने की सार्थक चेष्टा की है।

परिवार का स्वरूप तत्सम्बंधी धारणाएँ किसी भी देश के पारिवारिक जीवन का सांस्कृतिक विश्लेषण करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। जिसका कारण यह है कि परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। यदि परिवार व्यक्तियों का समूह हैं तो समाज परिवारों का समुदाय है। समाज के सांस्कृतिक आदर्शों का पालन अथवा उल्लंघन पारिवारिक जीवन में ही देखा जाता है। अस्तु, हमने बसव के पारिवारिक क्षेत्र से सम्बंधित विचारों को आधुनिक युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर आकलित करने का प्रयास किया है।

महात्मा बसवेश्वर की स्पष्ट धारणा थी कि गृहस्थ जीवन न तो साधना पथ की बाधा है और न ही इस कारण भक्त की भक्ति पर कोई आँच ही आ सकती है। सत्य तो यह है कि बसव ने तो संन्यस्त जीवन की तथा गेरूआं वस्त्र धारण करने की प्रवृत्ति की भर्तृसना की है। उनके विचारों के अनुसार संन्यासी बनना अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से दूर भागना है। अस्तु, उन्होंने भक्ति के लिए गृहस्थ जीवन का त्याग आवश्यक माननेवाली धारणाओं का खंडन किया है। साथ ही गृहस्थ जीवन की महत्ता का प्रतिपादन कर, वह किस प्रकार से भक्ति मार्ग की पथबाधा नहीं बल्कि सहायक साधन है इसका सोदाहरण विवेचन किया है। गृहस्थ जीवन की महत्ता का प्रतिपादन कर, महात्मा बसवेश्वर ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे एक ओर जहाँ अध्यात्म और सांसारिक जीवन का समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, वहीं दूसरी ओर उनके ये विचार आज के खंडित होती पारिवारिक जीवन में मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक सिध्द होते हैं।

परिवार सामाजिक संगठन का प्रथम चरण है, जिसकी नींव पर समाज की व्यवस्थाएँ तथा विचारधाराएँ खडी हैं। परिवार और समाज परस्परावलंबी तथा परस्परपूरक व्यवस्थाएँ हैं। अतः बसवण्णा ने तद्युगीन विकृत पारिवारिक स्थितियों को स्वस्थ रूप प्रदान करने के लिए गहन चिंतन कर जो विचार व्यक्त किये हैं वे अत्यंत प्रासंगिक सिध्द होते हैं। बसवण्णा ने इन्द्रियों का दमन करने की अपेक्षा वैधानिक रूप से उनकी तृप्ति करने पर जोर दिया है। जिसके लिए वे विवाह को बेहद महत्वपूर्ण मानते हैं। विवाह से जहाँ एक ओर व्यक्ति के ऐन्द्रिय भावनाओं की तृप्ति होती है, वहीं दूसरी ओर उससे इस संसार का क्रम भी बना रहता है. यही कारण था कि बसवण्णा संन्यस्त जीवन की अपेक्षा गृहस्थ जीवन को श्रेयस्कर मानते हैं। बसवेश्वर के मतानुसार जोगी बनना अपने कर्मों तथा कर्तव्यों से पलायन करना है। अस्तु, व्यक्ति को अपने गृहस्थ जीवन के कर्मों का निर्वाह करते

हुए मानवमात्र के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। तभी व्यक्ति ओर समाज की सर्वांगीण उन्नति संभव है।

स्त्री और पुरुष परिवार रूपी वाहन के वे दो पहिये हैं, जिनसे व्यक्ति का पारिवारिक जीवन यात्रा करता है। स्त्री और पुरुष दोनों भी महत्वपूर्ण हैं, अस्तु किसी को अधिक महत्वपूर्ण मानना और दूसरे को हीन मानना असंगत है। फिर भी न जाने क्यूँ भारतीय समाज में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की रही है। इसे देख बसवण्णा ने सर्वप्रथम तो नारी को माया माननेवाली धारणाओं का और उसे भक्ति पथ पर बाधा माननेवाली प्रवृत्ति का खंडन किया है। जो पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों को सुधारने के लिए बेहद महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। बसवण्णा सदाचार को बेहद महत्वपूर्ण मानते हैं, जिसकी पारिवारिक और सामाजिक उपयोगिता स्वयंसिध्द है। वे सदाचार का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं :

"देव-लोक और मर्त्य-लोक
दोनों भिन्न नहीं रे,
सत्य वचन ही देव-लोक
मिथ्या बोल ही मर्त्य-लोक
आचार ही स्वर्ग, अनाचार ही नरक।
कूडलसंगमदेव, तू ही इसका प्रमाण।।" [8]

संक्षेप में, बसवण्णा द्वारा प्रतिपादित सदाचार पारिवारिक और सामाजिक जीवन की थाती है। बसवण्णा की सदाचार सम्बंधी धारणा अत्यंत व्यापक और विस्तृत है। जहाँ न किसी प्रकार के अनाचार के लिए कोई कोई स्थान है और न ही स्वौराचार के लिए ही। बल्कि बसवण्णा हर एक की श्रम के प्रति निष्ठा और कर्मगत ऊँच-नीचता के भाव की अस्वीकृति को भी सदाचार का अंग मानते है। इस प्रकार बसवण्णा ने सदाचार के द्वारा पारिवारिक सम्बंधों तथा स्थितियों को निरापद करने की सार्थक चेष्टा की है। जिसकी आज भी प्रासंगिकता बनी हुई है।

3) सामाजिक क्षेत्र में

सम्प्रति ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य जाति ने अविश्वसनीय, अतुलनीय और अकल्पनीय उन्नति की है। जहाँ भौतिक जीवन और भौतिक सुखों को मनुष्य के जीवन में इतना महत्त्व प्राप्त हो गया है कि वह जीवन के उच्चादर्शों तथा पारलौकिक पक्ष को पूर्णतः विस्मृत कर चुका है। इसी का परिणाम है कि आज कतिपय विद्वान यह प्रश्न करते हैं कि प्राचीन संत साहित्य का अध्ययन, अध्यापन करने की तथा उसपर चिंतन, मनन एवं चर्चाएँ करने की आज क्या आवश्यकता

है ? या संत साहित्य का आज के वैश्वीकरण दौर में क्या औचित्य है? इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा हमेशा से संत साहित्य पर अंगुली उठाने का या उसे आज के दौर में महत्वहीन सिध्द करने की धृष्टता की जा रही है। जो कि पूर्णत्तः भ्रममूलक व अज्ञानतापूर्ण आचरण का प्रतिफल है. जो विद्वान इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित करते हैं उन्होंने या तो संत साहित्य का सम्यक् अध्ययन नहीं किया है या फिर उन्होंने संत कबीर, बसव, तुलसीदास आदि संतों के साहित्य के सिर्फ आध्यात्मिक पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण माना है। फलतः वे अपनी अज्ञानता का परिचय इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित कर देते रहते हैं।

संत साहित्य चाहे वो किसी भी भाषा अथवा संत का हो उसके सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर कदापि अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इनकी चिंतनभूमि धर्मपधान अथवा आध्यात्मिक होने के बावजूद पूर्ण रूप से अपनी युगीन परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं की उपज है। अतः हम देखते हैं कि संतों की सामाजिक चेतना उतनी ही व्यापक और विस्तृत है जितनी कि उनकी आध्यात्मिक चेतना। इसमें एक और बात विशेष महत्त्व रखती है कि तद्युगीन समाज व जीवन पध्दति धर्म प्रधान अथवा धर्मधिष्ठीत थी, जिस कारण कबीर, बसव और तुलसी आदि महापुरुषों ने अपनी सामाजिक भावनाओं तथा विचारों की अभिव्यक्ति भी धर्म और अध्यात्म की सहायता से की है. यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि कबीर और बसव की प्रखर सामाजिक चेतना अध्यात्म के आश्रय में इसलिए चली गई, क्योंकि लोगों को आकर्षित करने का तथा उनमें चेतना जगाने का यही एक मात्र माध्यम इनके सम्मुख था। अस्तु, हमारा यह निष्कर्ष है कि बसव के सामाजिक दृष्टिकोण को 'बाई प्रोडक्ट' मानना या उसका स्थान दोयम मानना अन्यायपूर्ण प्रतीत होता है। अतः बसव उतने ही बडे समाज सुधारक या मानवतावादी चिंतक रहे हैं, जितने कि उच्चकोटि के भक्त। अतएव उनके विचार आज उससे ज्यादा कहीं अधिक महत्व रखते हैं, जितने की तद्युगीन परिस्थितियों में रखते थे। सत्य तो यह है कि उनकी उपादेयता आज की विषम परिस्थितियों में दिन-ब-दिन बढ़ रही है। फलतः उनके विचार अत्याधिक मात्र में प्रासंगिक सिध्द हो रहे हैं।

सम्प्रति समाज में कई प्रकार की बुराइयाँ व कुरीतियाँ व्याप्त हैं, जिनका निराकरण करना परमावश्यक है किन्तु यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान परिस्थितियों में हमारे पास ऐसा कोई नेतृत्व या व्यक्तित्व मौजूद नहीं है, जो सामाजिक परिदृश्य को स्वस्थ रूप प्रदान करने के लिए किसी निर्णायक आन्दोलन का सूत्रपात कर सके। अस्तु, सामाजिक जीवन को निरापद करने के लिए हमें ऐतिहासिक पात्रों से प्रेरणा व मार्गदर्शन प्राप्त करना होगा। हमारे इतिहास में कई

ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने युगीन स्थितियों से लोहा लेकर तद्युगीन व्यक्ति और समाज में व्याप्त बुराइयों को निरस्त करने की सार्थक चेष्टा की है। जिनमें अग्रणी नाम महात्मा बसवेश्वर का है। जिनके विचार व कार्य आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक सिध्द होते हैं।

आज की भाँति ही बसवयुग में भी कर्नाटक में सामाजिक स्थितियाँ अत्यंत शोचनीय थी। अतः बसवण्णा की अटूट धारणा बनी कि जब तक सामाजिक क्रांति नहीं होगी तब तक धार्मिक एवं राजनैतिक पहलुओं का परिमार्जन नहीं हो सकेगा। यही कारण रहा है कि बसवण्णा का उद्देश्य केवल तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का मूलोत्पाटन करके व्यक्ति स्वातंत्र्य, समानता, वैचारिकता एवं बंधुता के धरातल पर नये समाज का निर्माण करना था। विश्व बंधुता, मानवता एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श प्रत्यक्ष करना उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इन उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए ही बसवण्णा ने शरण आन्दोलन का सूत्रपात किया है।

बसव का व्यक्तित्व और कृतित्व एक धर्मप्रवर्तक और महान भक्त के रूप में जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही उनके व्यक्तित्व में निहित समाज सुधारक का रूप भी महत्वपूर्ण है। बसवण्णा के समग्र साहित्य का सम्यक् आकलन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि बसव के व्यक्तित्व का समाज-सुधारक का रूप ही प्रमुख है। धर्म और अध्यात्म तो उनके लिए भूले-भटकों को सही मार्ग दिखाने का तथा उन्हें सदाचार की शिक्षा देने का साधनमात्र रहा है। हाँ यह दीगर बात है कि कालांतर में उनके ही अनुयायियों ने उनके व्यक्तित्व को अलौकिकता का रूप प्रदान कर, उनके सामाजिक विचारों को दीर्घावधि तक अंधकार की खाई में कैद कर दिया था किन्तु, सैंकडों अनुसंधानकर्ताओं और करोड़ों अनुयायियों के अथक प्रयासों के बाद आज बसव के विचारों की महत्ता का लोहा समस्त संसार ने स्वीकारा है।

वर्तमान में व्यक्ति का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पूर्णतः कलुषित व भ्रष्ट हो चुका है। जहाँ चारों ओर उठती स्वार्थ की लपटों ने कई ऐसी सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है, जो आज इतनी भयावह एवं खतरनाक हैं कि यदि हमने मध्यकालीन संतों की वाणी का अनुसरण नहीं किया, तो निश्चित ही हमारा भविष्य इन तुच्छ स्वार्थ की लपटों में जलकर स्वाहा हो जायेगा। बसव ऐसे ही एक महान चिंतक एवं समाज सुधारक रहे हैं, जिनके विचारों का पालन करना और उनके बताये आदर्शों पर चलना हमारी युगीन आवश्यकता है। बसव ने कायक द्वारा जहाँ शारीरिक श्रम की प्रवृत्ति का समर्थन कर समाज में अर्थ के कारण

होनेवाले अनिष्टताओं को समाप्त करने की सफल चेष्टा की है। जाति प्रथा के सन्दर्भ में बसवण्णा के जो विचार रहें हैं, वे भी अत्यंत विचार्य और प्रासंगिक हैं। उन्होंने जाति-प्रथा का विरोध कर कर्मगत ऊँच-नीचता का कठोर शब्दों में खंडन किया है। साथ ही बसवण्णा की धारणा रही है कि जीविकोपार्जन के लिए किया जानेवाला कोई भी कायक छोटा या बड़ा नहीं होता. स्त्रियों के सन्दर्भ में तो बसवण्णा के विचार इतने प्रगत थे कि आज के तथाकथित स्त्री-विमर्श के पक्षधर भी बौने साबित होते हैं। प्रथम तो उन्होंने स्त्री-पुरुष के नाम पर प्रचलित श्रेष्ठ-कनिष्ठ के भाव को नकारा और फिर उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष अधिकार देने की वकालत की है। स्त्रियों को 'अनुभव मंटप' में प्रवेश देना बसवण्णा का क्रांतिकारी निर्णय था। जिस कारण आज लगभग 70 से अधिक शरणियों का वचन साहित्य उपलब्ध होता है। आज के स्त्री-विमर्श के लिए बसवण्णा द्वारा किया गया यह साहस प्रेरणाप्रद सिध्द हो सकता है।

लिंगायत धर्म की स्थापना करने के कारण कुछ विद्वान बसवण्णा के व्यक्तित्व में धर्मसुधारक या धर्मप्रवर्तक के रूप को ही प्रधान मानते हैं। जबकि, सत्य तो यह है कि बसवण्णा का "विश्वास था कि सभी प्रकार की पीड़ा और यातना का मूल कारण बनावटी भेदभाव और ऊँच-नीच पर आधारित वर्तमान सामाजिक रचना है। अतः इस सामाजिक व्यवथस्था में आमूल परिवर्तन अनिवार्य है। शिव के प्रति श्रध्दा और भक्ति के विकास से यह सामाजिक सुधार संभव है। शिव भक्तों में जाति, सम्प्रदाय, लिंग, जन्म या जीवन स्तर के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। सभी शिवभक्त समान हैं।"[9] अतः उन्होंने परम्परागत हिन्दू धर्म का त्याग कर भेद-भाव रहित लिंगायत धर्म का प्रतिपादन किया है।

धन मनुष्य के जीवन का साधनमात्र है, लेकिन इसे ही मनुष्यों के द्वारा सध्य मानने के कारण व्यक्ति और समाज में कई प्रकार की अनिष्टताओं को प्रश्रय मिला है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर बसवण्णा धनसंचय की प्रवृत्ति की निंदा करते हैं और धन के मोह को त्यागने का आह्वान करते हुए भगवान को साक्षी रख प्रण करते हैं :

'एक रत्ती भर भी सोना, साडी का एक धागा भी
आज के लिए, कल के लिए चाहिए कहूँ तो
तुम्हारी शपथ, तुम्हारे पुरातनों की शपथ.... ।"[10]

जिसका प्रमुख उद्देश्य धन को मोह त्यागने की प्रेरणा देना रहा है. साथ ही बसव की सदाचार सम्बंधी धारणाएँ इतनी व्यापक रहीं हैं कि यदि हम उनका पालन करें तो समाज में व्याप्त सभी प्रकार की अनिष्टताएँ समूल नष्ट हो जायेगी।

बसव एकांत साधना में लीन होकर आत्मोन्नति के अन्वेषी या पथिक नहीं बने, बल्कि वे तो भक्ति के द्वारा ऐसे उच्चादर्शों की प्रतिष्ठापना करने के लिए अवतरित हुए थे जो हर युग के समाज की आवश्यकता रही है। आज की विषम सामाजिक परिस्थितियों में इनके विचारों का अनुशीलन व आचरण करना बेहद आवश्यक है। अतएव जब तक हमारी सामाजिक परिस्थितियाँ पूर्णतः स्वस्थ और निरापद नहीं होती, तब तक उनके विचारों से मनुष्यजाति लाभान्वित होती रहेगी और उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी।

4) राजनैतिक क्षेत्र में

आज के इस स्वार्थ लोलुप वातावरण में यह प्रश्न अत्यंत विचार्य है कि मानवजाति ने किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक व्यवस्था का सूत्रपात किया था? किस उद्देश्य से व्यक्ति ने अपने पर शासन करने का अधिकार राज्य को सौंपा था? या किन उद्देश्यों के लिए अपने आचार और विचारों का नियमन स्वीकार किया था? और आज ये सभी उद्देश्य किस हद तक फलीभूत हुए हैं? इसका कारण यह है कि आज की विकृत राजनीतिक परिस्थितियों और स्वार्थांध नेताओं को देखकर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये सभी उद्देश्य काल के गर्त में खो गयें हैं। जिनका स्थान ऐसे उद्देश्यों ने लिया जिन्हें देखकर हर सज्जन तथा बुद्धिजीवी व्यक्ति राजनीति से तौबा कर लेता है। राजनीति ने ऐसे गुणों और भावनाओं को प्रश्रय दिया है, जो समस्त मानवजाति के लिए विघातक हैं। अस्तु, राजनैतिक क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में बसव के विचारों का अनुशीलन करने का यत्नकिया गया है, क्योंकि जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों की भाँति राजनैतिक क्षेत्र में भी इनके विचार मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक सिध्द होते है।

बसव के विचारों में अभिव्यक्त राजनैतिक पहलुओं का स्पष्ट करने से पहले हमें धर्म और राजनीति तथा साहित्य और राजनीति के अंतर्संबंध को जान लेना आवश्यक है। बसव प्रथमतः एक उच्चकोटि के भक्त हैं, फिर यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि राजनीति के साथ उनका क्या संबंध रहा है? तो इस प्रश्न का यह उत्तर दिया जा सकता है कि भारतीय समाज में धर्म और राजनीति कभी विलग होकर नहीं चले हैं। दोनों स्वतंत्र होने के बावजूद, दोनों एक दूसरे को प्रभावित तथा नियमित करते रहे हैं। एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते रहे हैं, यही कारण है कि भारतवर्ष में धर्मधिष्ठीत शासनपद्धति की ओर शासन की छत्रछाया में धर्म के पल्लिवत व पुष्पित होने के ढेरों उदाहरण मिलते है। इसके साथ ही, ''साहित्य और राजनीति एक दूसरे से अलग नहीं परस्पर सम्बध्द हैं। दोनों असल में एक ही

सामाजिक प्रक्रिया के दो पहलू हैं। राजनीति जीवन की एक महत्वपूर्ण दिशा है और इससे समाज, अर्थ, धर्म सभी प्रभावित हुए हैं। जब हम जीवन की समस्याओं को सत्ता या व्यवस्था के धरातल पर हल करने की कोशिश करते हैं तो बात प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक हो जाती है और जब हम उन समस्याओं को संवेदना के स्तर पर हल करने की कोशिश करते हैं तो वह साहित्य की सीमा में आ जाती है।''[10] इस प्रकार धर्म और राजनीति तथा साहित्य और राजनीति अन्योन्याश्रित हैं। यही कारण रहा है कि बसव के विचारों में राजनैतिक चिंतन की अभिव्यक्ति हुई है।

बसव के व्यक्तित्व और कृतित्व का यह सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है कि उन्होंने अपने विचारों को जीवनकाल के दौरान ही उन्हें मूर्त रूप प्रदान करने की सार्थक चेष्टा की है। जिस कारण बसव भारत की संत परम्परा में एकमात्र ऐसे हस्ताक्षर दिखाई देते है, जिनका आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक चिंतन सिर्फ वैचारिकता के धरातल तक सीमित नहीं रहा बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में मूर्त रूप धारण कर हमारे सामने प्रकट होता है। बसव का राजनैतिक चिंतन भी क्रियाशील व सुस्पष्ट है। जिसे उन्होंने अनुभव मंटप के द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया है। अनुभव मंटप बारहवीं सदी में स्थापित इस दुनिया की पहली प्रजातांत्रिक संसद है। जहां किसी प्रकार के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं था और सभी वर्ण, जाति, पंथ और लिंग के लोगों को समान अधिकार व समान रूप से प्रवेश प्राप्त था और हर कोई निर्भय होकर स्वतंत्र रूप से अपने विचारों को रख सकता था।

बसव ने इस अनुभव मंटप की नींव रखने के साथ-साथ राजनीतिक परिशुद्धि के लिए जो गहन चिंतन-मनन किया था वो भी अत्यंत विचार्य है। बसव के राजनैतिक विचार इस दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण हैं कि बसव के राजनैतिक विचारों में अन्य संतों की अपेक्षा अधिक पैनापन एवं व्यापकता है, क्योंकि बसव तद्युगीन शासन व्यवस्था का अंग (बिज्जल राजा के दरबार में महामंत्री) थे। जिस कारण उन्हें तद्युगीन शासनव्यवस्था और शासकों में व्याप्त बुराइयों को बहुत नजदीक से देखने का मौका मिला है। वे इन बुराइयों के कारणों तथा कारकों से भली-भाँती परिचित थे, इसलिए इन बुराइयों को निरस्त करने में अधिक सफल हुए हैं। बसवण्णा ने शासकों की स्वार्थ लोलुपता, शक्तिशाली बनने की महत्वाकांक्षा और सत्ता के केन्द्र में बनी रहने की उनकी जिद्द को तथा उनके दुष्परिणामों को देख चुके थे, समझ चुके थे। जिनका निराकरण करने के लिए उन्होंने जो उपाय व विचारसूत्र दिये हैं, वे बेहद महत्वपूर्ण हैं। आज की राजनीति में भी लगभग इन्हीं सारे दोषों को दूर करने के लिए निर्णायक सिध्द हो सकते हैं।

सत्ता के मद में अक्सर शासक वर्ग यह भूल जाता है कि उसका जीवन भी

प्रकृति के उन्हीं नियमों से संचलित होता है, जिनसे शासितवर्ग का होता है। बसव इसी की ओर ध्यान आकर्षित कर शासकों को चेताते हैं कि उचित पध्दति से जीवन-यापन करना, शासन करना ही शासक के जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए अन्यथा जीवन निरर्थक ही बीत जायेगा, बसव कहते हैं :

''हाथी पर सवार होकर चले जा रहे हो भौया!
अश्व पर सवार होकर जा रहे हो
कुंकुम, कस्तूरी का लेपन किये जा रहे हो भैय्या!
मगर सत्य का निजरूप न जान पाये तुम
सद्गुण रूपी फल बिन बोए-बिन काटे चले गये तुम!
अहंकार रूपी मदगज पर सवार होकर
स्वयं विधि के शिकार बन गये न!'' [11]

इसलिए व्यक्ति को सत्ता के मोह का त्याग तथा उससे जुड़ी स्वार्थी प्रवृत्तियों का विसर्जन कर जीवन-यापन करना चाहिए, इस बात पर बसवण्णा जोर देते रहे हैं।

संक्षेप में, बसव ने राजनीति और उसमें व्याप्त बुराइयों को काफी करीब से देखा था, इसीलिए वे इनका निरसन करने में सफल हो पाये हैं। उनके द्वारा संस्थापित अनुभव मंटप, आदर्श राज्य एवं राजा की परिकल्पना निश्चित ही आज की राजनीति एवं देश के कर्ता-धर्ताओं के लिए मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक सिध्द हो सकती है। अंत में कहा जा सकता है कि भ्रष्ट आचरण व्यक्ति के जीवन से जुड़ी हुई सभी अनिष्टताओं तथा बुराइयों की जननी है। बसव ने व्यक्ति को शुध्दाचरण की प्रेरणा देकर समाज और उससे जुड़ी हुई विभिन्न संस्थाओं को स्वस्थ रूप प्रदान करने की सार्थक चेष्टा की है

5) धार्मिक क्षेत्र

यह सत्य है कि व्यक्ति का व्यक्तिगत व सामुहिक जीवन सुखकर, निरापद, समुन्नत व सदाचारपूर्ण करने के उद्देश्य से धर्म की अवधारणा का उद्भव और विकास हुआ है। धर्म उस विचारधारा का नाम है, जिसका प्रथम और अंतिम उद्देश्य सर्वजन हिताय सर्वजनसुखाय रहा है। अतः धर्म चाहे कोई भी हो, उसका मूल प्रतिपाद्य लौकिक एवं सामाजिक सत्कार्यों द्वारा

व्यक्ति के जीवन को विकास के परमोच्च शिखर पहुँचाना है। व्यक्ति की सद्वृत्तियों के आधार पर उसमें देवत्व का भाव जागृत करना ही धर्म का मूल उद्देश्य है। लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जिन उच्चादर्शों को लेकर धर्म की नींव रखी गई थी, कालांतर में वही धर्म मनुष्य की संकीर्ण भावनाओं, आचारों

और विश्वासों के कारण पूर्णतः विकृत बन गया है जिस कारण कई प्रकार के अनर्थ व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन के साथ हो रहे हैं। यही स्थितियाँ मध्ययुग में भी परिलक्षित होती थी, जिन्हें देखकर महात्मा बसवेश्वर ने धर्म और धर्म से जुड़ी संकुचित भावनाओं का त्याग करने पर जोर देकर मानवतावाद को ही धर्म घोषित किया है।

आज धर्म की संकुचित अवधारणाओं के कारण सामाजिक जीवन पूर्णतः प्रदूषित हो चुका है। जहाँ कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने बार-बार लोगों की धार्मिक भावनाओं को जगाकर उनमें धार्मिक कट्टरता को जागृत रखने का जघन्य अपराध किया है। साथ ही धर्म के नाम पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ऐसी खाई निर्माण कर दी है, कि जिसे यदि उचित समय पर मिटाया न गया तो धार्मिक संघर्ष के कारण मनुष्य जाति के भविष्य पर ही प्रश्नचिन्ह अंकित हो जायेगा। अतः मनुष्यजाति के भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए तथा उसे स्वस्थ रूप प्रदान करने के लिए बसव के साहित्य का अनुशीलन अनिवार्य हो जाता है। आज भी इनके विचारों की उपादेयता निश्चित ही बनी हुई है।

यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि सभी धर्मों का निर्माण उच्चादर्शों को लेकर हुआ है, किन्तु व्यक्ति की संकीर्ण धारणाओं के कारण उसे विकृत रूप प्राप्त हुआ है। दया भाव के अभाव के कारण और तुच्छ भावना के कारण धर्म का सच्चा रूप तिरोहीत हो चुका है। तब धर्म के सच्चे रूप से समाज को परिचित कराना बेहद आवश्यक बन जाता है-बसव की धर्म संबंधी व्याख्या आज बेहद महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि मनुष्य के हाथ में विनाशक शक्तियाँ इतने भयावह परिणाम में आये हैं कि अब उनकी ओर से आँखे नहीं मूँद सकते और न जान-बुझकर किसी विपत्ति को निमंत्रण दे सकते हैं। संसार की एकता अर्थात् लोकसंग्रह अब केवल निरीह स्वप्न नहीं रह गया है। यह अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। भौतिक, आर्थिक और राजनैतिक घटनाओं का तकाजा कुछ ऐसा है कि संसार की एकता की रूपरेखा तैयार होती जा रही है। अगर इस एकता को टिकाऊ बनाना है तो हमें धर्म की संकुचित भावनाओं को विसर्जित कर, समाज में मानवतावादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बसव सरीखे विचारक हमारे पास है। जिनके विचारो की सहायता से हम धर्म के कारण अथवा धर्म के नाम पर होनेवाली सभी अनर्गल, अमानवीय और अन्यायपूर्ण चीजों को निरस्त कर सकते हैं। ''वस्तुतः आज हमारे सामने दोहरा धर्मिक लक्ष्य है। एक तो हिन्दू धर्म को जाति-पाँति के कलंक से मुक्त करने का और दूसरा है विभिन्न धर्मों में सामंजस्य की भावना प्रस्थापित करने का। यदि उक्त में से हम एक भी लक्ष्य

को प्राप्त न कर सके तो इस महाद्वीप में पुनः एक बार साम्प्रदायिकता के दावानल का भड़क उठना सहज सम्भव है।''[12] अतः हमारे पास बसव की वाणी वह एकमात्र साधन है, जो भविष्य के गर्भ में छिपे हुए संकट से हमें मुक्ति प्रदान कर सकती है।

कर्नाटक में बसवेश्वर के अविर्भाव से पहले सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन में घोर अंधकार छाया हुआ था। ऐसे घोर अंधकारमय युग में बसव ज्योति बनकर आये, जिन्होंने तद्युगीन समाज में व्याप्त सभी प्रकार की अनर्गल रुढ़ियों, परम्पराओं तथा आडम्बरों का खंडन कर जनजीवन में समन्वय, एकता और बंधुता की भावना स्थापित करने के उद्देश्य से 'शरण आन्दोलन' की नींव रखी थी। बसव ने जब देखा कि समाज में छुआछूत, ऊँच-नीच का भेदभाव, अंधश्रध्दा, पांखड, वर्गभेद, वर्णभेद, लिंगभेद, धर्म के नाम पर पशुहिंसा, कर्मकांड, स्त्रीदास्यत्व, अनीति, अनाचार और शोषण का वर्चस्व है, तब उन्होंने इनकी पृष्ठभूमि की ओर ध्यान दिया। और पाया कि समाज में व्याप्त लगभग सभी प्रकार की बुराइयों की जडें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में धर्म के विकृत रूप में हैं। यदि समाज को स्वस्थ रूप प्रदान करना है, तो पहले उसके जीवन को प्रभावित करनेवाली धार्मिक धारणाओं तथा मान्यताओं का शुध्दिकरण करना आवश्यक है। कुछ स्वार्थी तत्त्वों के कारण धर्म का सात्विक रूप तिरोहित हो गया था और उसका स्थान अनर्गल रुढ़ियों और परम्पराओं ने लिया था। फलस्वरूप समाज के सम्मुख धर्म की अवधारणा का मूल स्वरूप स्पष्ट करना बेहद आवश्यक था। बसव ने इसी आवश्यकता की पूर्ति 'लिंगायत धर्म' की स्थापना कर की है। कर्नाटक का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास इस बात की साक्षी है कि बसव के यह विराट प्रयास आज बड़ी हद तक सार्थक व सफल सिध्द हुए हैं।

बसव द्वारा प्रवर्तित 'लिंगायत धर्म' जाति-भेदराहित, समाजवादी, लिंगभेद विरोधी, पाणिवाद का प्रतिष्ठापक और समाजकल्याण को प्राथमिकता देनेवाला धर्म है। बसव ने स्पष्ट रूप से अनुभव किया था कि परम्परागत धर्म किसी भी मूल्य पर जातिभेद का निर्मूलन नहीं करना चाहता।

इसलिए उन्होंने 'लिंगायत धर्म' की स्थापना की है जिसका प्रमुख लक्ष्य सभी प्रकार की अनिष्ट तथा अन्यायपूर्ण भेदों का निर्मूलन करना रहा है। ''बसव की स्पष्ट धारणा थी कि अस्पृश्यता एक कलंक है।''[13] जिसका उच्चाटन करने पर बसव ने सर्वाधिक जोर दिया है। इस सन्दर्भ में डॉ. दे. जवरेगौडा जी का कथन बेहद महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। जिसमें उन्होंने बसव के जाति निर्मूलन के प्रयासों का उल्लेख करते हुए लिखा है, ''जातियता, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग

करनेवाली है, जो अहंकार की घोषना करनेवाली है, जो शोषण की सहयोगी है, जो सामाजिक सुरक्षा के लिए अपायकारी है ओर जो राष्ट्रीय एकता के लिए मारक है उस जातियता का यदि मूलोत्पाटन करना चाहते हैं तो उस जातियता से भी क्रूर अस्पृश्यता है, इस अस्पृश्यता का नामोनिशान मिटाने का प्रयत्न करनेवाले सर्व प्रथम व्यक्ति बसवेश्वर हैं और आजतक के अंतिम व्यक्ति भी वे ही हैं।''[14] जातियता व अस्पृश्यता के निवारण के लिए बसव अंतरजातीय विवाह को बेहद महत्वपूर्ण मानते हैं। अन्तरजातीय विवाह के द्वारा ही समाज से जातीय ऊँच-नीचता की भावना को मिटाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर बसवण्णा ने ''मधुवरस (पूर्व जाति ब्राह्मण) की बेटी कलावती और हरळय्या (पूर्व जाति-अस्पृश्य चमार) के बेटे शीलवंत से विवाह कराया था।''[15] 12वीं शती के धर्मांध वातावरण में बसव का यह प्रयास आज के लिए भी प्रेरणापद एवं प्रासंगिक है.

बसवण्णा ने धर्म को लोकमंगलकारी और सर्व भेदभावों से रहित सामाजिक वस्तु माना है। अतः उन्होंने तद्युगीन धर्म में व्याप्त बुराइयों का उच्चाटन करने का बीडा उठाया और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन धार्मिक कुरीतियों सें संघर्ष किया है. बसव दयाभाव को धर्म का मूल्य मानते हैं क्योंकि सच्चा धर्म वही है, जो व्यक्ति में दयाभाव को जागृत करता है :

''दया बिन धर्म वह कौन-सा धर्म है?
दया होनी चाहिए सभी प्राणियों के प्रति
दया विहीन को कभी न चाहेगा
कूडलसंगमदेव।।''[16]

तद्युगीन धर्म में दयावान के अभाव तथा बहुदेववाद ने कई प्रकार की कुरीतियों को जन्म दिया था और उसे प्रश्रय सगुणों पासना ने दिया था। यही कारण रहा है कि बसव ने पहले तो दयाभाव को धर्म का मूल सिध्द किया और फिर एकेश्वरवाद तथा निर्गुणोपासना के द्वारा धार्मिक आडम्बरों और पाखण्डों का विरोध किया है। बसव के धर्म सुधारणा सम्बधी यह प्रयास आज के धर्मांध वातावरण में हमारे बेहद मार्गदर्शक, उपादेय एवं प्रासंगिक सिध्द होते हैं ।

वर्तमान में चारों ओर धर्म की संकीर्ण भावनाओं ने सामाजिक वातावरण को पूर्णरूपेण बिगाड़ चुका है। इस वातावरण को शुध्द करना तथा उसके द्वारा सामाजिक स्वास्थ्य को स्वस्थ रूप प्रदान करना युग की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति की दृष्टि से महात्मा बसवेश्वर के विचारों की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी। उनके विचार सदैव धर्म के कारण भूले-भटके लोगों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

6) साहित्यिक क्षेत्र

यद्यपि यह सत्य है कि महात्मा बसवेश्वर रूढ़ अर्थ में न तो कवि थे और न ही कविकर्म करना उनका उद्देश्य रहा है तथापि, महात्मा बसवेश्वर के साहित्य का सम्यक् अनुशीलन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि कविता की तमाम कसौटियों के आधार पर भी वे महाकवि सिध्द होते हैं। 'साहित्य' शब्द की अवधारणा तथा साहित्याचार्यों द्वारा इसकी की गई परिभाषाओं के आधार पर भी यह निर्विवाद रूप से सिध्द होता है कि बसव उच्चकोटि के कवि रहे हैं। साहित्य का मूल उद्देश्य समाज का पथप्रदर्शन करना तथा उनमें जीवन के सही उच्चादर्शों के प्रति चेतना जागृत करना माना गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति जितनी बसव के साहित्यद्वारा होती है, शायद ही वह तथाकाथित साहित्यकारों के साहित्यद्वारा हो। अतः हम निष्कर्ष रूप में हम सिर्फ इस तथ्य का प्रतिपादन करना चाहते हैं कि आज तक कई कतिपय विद्वानों द्वारा तथा स्वयंघोषित मूर्धन्य विद्वानों द्वारा बसव के कवित्व पर जो प्रश्न उठाये गये हैं, वे पूर्णतः निरर्थक हैं। साहित्य सामाजिक वस्तु है। अतः जो साहित्यकार समाज के कल्याण के लिए साहित्य की रचना करता है वही सच्चा साहित्यकार है। इस दृष्टि से बसव का साहित्य आज की साहित्यिक गतिविधियों और साहित्यकार के लिए मार्गदर्शक व उपादेय सिध्द होती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि, "साहित्य और समाज का संबंध द्वंद्वात्मक है। एक तरफ वह समाज से प्रभावित होकर उसे प्रतिबिम्बित करता है तो दूसरी ओर उस बदलने और संशोधित करने की भूमिका अदा करता है। इस प्रतिबिम्बन की प्रक्रिया में उसकी सत्यता-असत्यता या उसके सही या गलत होने के आधार प्रस्तुत होते है। उसकी सही या गलत होने की कसौटी निश्चित रूप से युगीन ही हो सकती है। अतः साहित्यकार सामाजिक व्यक्ति ही होता है। अतः साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता का संबंध सामाजिक मान्यताओं के औचित्य का प्रतिपादन है। समाज की उचित मान्यताओं की अवहेलना करनेवाला साहित्य कदापि प्रासंगिक नहीं हो सकता। जन-मानस में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं को नकार कर, उच्च और उदात्त मान्यताओं का प्रतिपादन करते हुए कल्याणकारी तत्त्वों को समृध्द करना साहित्य का उत्तरदायित्व है।"[17] जिसकी पूर्ति के लिए साहित्यकार में बसव सी निर्भीकता, साहस, लोकमंगल की उत्कटता और सामाजिक समस्याओं तथा आवश्यकताओं के प्रति सजगता होना आवश्यक है। अतः आज के साहित्यकारों के लिए कबीर और बसव का साहित्य निश्चित ही अनुकरणीय और मार्गदर्शक है।

वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों के अभाव ने कई प्रकार के अनाचारों को जन्म दिया है। जिस कारण सम्प्रति नैतिक मूल्यों की नितांत आवश्यकता महसूस की जा रही है। समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति चेतना जागृत करने की दृष्टि से भी कबीर और बसव का साहित्य नितांत उपयोगी सिध्द हो सकता है। कबीर और बसव ने जिस साहस और निर्भीकता के साथ अपने विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने की सफल चेष्टा की है, वह भविष्य में भी लोकमंगल की भावना से प्रेरित कर्मठ लोगों के लिए प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करती रहेगी। बसव ने अन्याय के साथ रत्ती भर भी समझौता नहीं किया व धर्म के ठेकेदारों के अनवरत अन्याय और अत्याचारों के सम्मुख न वे कभी झुके बल्कि, समाज कल्याण के लिए कर्मठ बने रहे हैं। उनके व्यक्तित्व के यह बिन्दु निश्चित ही आज तथा भविष्य में मनुष्यजाति को अन्याय के विरुध्द लड़ने की प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे। बसव साहित्य के अनुशीलन से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि इन दोनों के साहित्य में सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं, उनका अवगाहन करने से व्यक्ति व समाज को अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, दूराचार व अन्य सामाजिक समस्याओं से लड़ने की अदम्य शक्ति व साहस की प्राप्ति होगी। उनका चिंतन जहाँ विषमतामूलक परिस्थितियों का निर्मूलन कर, समाज में कल्याणकारी एवं लोकहितकारी परिवेश की निर्मिती में शत-प्रतिशत अहम भूमिका निर्वाहित करने में कारगर सिध्द हुआ है, वहीं मानव को मानवीय रूप में रूपायित करने में भी सफल हुआ है।

संदर्भ

1. सम्पा-आचार्य नन्द किशोर-मुंशी प्रेमचंद-साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद का चिंतन, पृ. 178
2. डॉ. बाहरी, हरदेव-हिन्दी शब्दकोश, पृ. 551
3. डॉ. फिलिप, वी. एन-मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता, पृ. 203
4. श्रीमती, बी.एम. मानसशात्र गुरु बसवन्ना, बसव दर्शन (त्रैमासिक) जून 2006 के, पृ. 72 से उद्धृत
5. सम्पा. कोटराशेट्टी, डॉ. बी.एम. भक्ति भण्डारी बसवेश्वर के वचन, वचन 106, पृ. 35
6. वही, वचन 119, पृ. 28
7. अनु. प्रभाशंकर प्रेमी, डॉ. टी.जी. बसवेश्वर के चुने हुए 108 वचन, वचन 92, पृ. 46
8. वही, वचन सं. 107, पृ. 52
9. सम्पा. जयशेट्टी, प्रो. भालचन्द्र-वचन, वचन सं. 31, पृ. 31
10. सम्पा. कोटराशेट्टी, डॉ.बी. एम. भक्तिभण्डारी बसवेश्वर के वचन, प्रस्तावना, पृ. 06
11. अनु. प्रभाशंकर प्रेमी, डॉ-टी.जी. बसवेश्वर के चुने हुए 108 वचन, वचन सं. 108, पृ. 52
12. डॉ. देवरेगौड़ा, जे. बसव दर्शन (त्रैमासिक) अक्तूबर-2005
13. अषतेकर, ग.तू.-मराठी संत कवियों की सामाजिक भूमिका, पृ. 151
14. गुंजाल, प्रो. आर.एस. बसवेश्वरका आत्मकथन, पृ. 30

15. सम्पा. लिगाड़े, जयदेविताई, शून्यसंपादन, पृ. 01
16. अनु. प्रभाशंकर प्रेमी, डॉ.टी.जी. बसवेश्वर के चुने हुए 108 वचन, वचन सं. 02 पृ. 03
17. शर्मा, डॉ तिलकराज-श्रेष्ठ साहित्यिक निबंध, पृ. 37
18. सिंह, डॉ. रवींद्र कुमार-संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 37

4. विवेकानंद : ज्ञानयोग और मानवीय मूल्य

प्रा. डॉ. पल्लवी भूदेव पाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष
राजर्षी शाहू महाविद्यालय, (स्वायत्त) लातूर, महाराष्ट्र

1) विवेकानंद के ज्ञानयोग पट पर प्रकाश डालना।

2) ज्ञानयोग में बसे मानवीय मूल्य-धर्म, सत्य को समझना।

3) जीवन की यांत्रिकता को विवेकानंद दूर करते हुए आत्मज्ञान का महत्व समझाते हैं।

प्रशांत मूर्ति, नेत्रों से विद्युत प्रकाश, दाढ़ी-मूँछ मुंडी हुई, शरीर पर गेरूआ अगरखा, पैर में मरहठी चप्पल, सिर पर गेरूई पगड़ी, संन्यासी की इस भव्य मूर्ति का जब स्मरण होता है तब आँखों के सामने आते हैं स्वामी विवेकानंद। विवेकानंदजी के ज्ञानयोग में अधिक मात्रा में मानवीय मूल्य दिखाई देते हैं। ज्ञानयोग का पहला अध्याय है-धर्म की आवश्यकता। मनुष्य को एकता के सूत्र में पिरोनेवाली सबसे बड़ी शक्ति यदि कोई है तो धर्म है। इजिप्त, बाबिलोनिया, चीन, अमेरिका इन देशों ने धर्म की परिभाषा करना शु डिग्री कर दिया और उनके यह ध्यान में आया कि पूर्वजों की पूजा से धर्म की व्युत्पत्ति होती है। इजिप्त में मृत शरीर को बहुत महत्व है। प्राचीन ग्रंथों से यह सिद्ध होता है ऋगवेद में यदि कुछ प्राप्त होता है तो वह प्रकृति पूजा है। विवेकानंद कहते हैं- धर्म की युत्पत्ति प्रकृति की शक्ति पर मानवीय गुणों का आरोपित होना है। मनुष्य के पास जितना है वह केवल उसी पर निर्भर नहीं रहता। मनुष्य में प्रत्येक चीज को लेकर जिज्ञासा होती है। विवेकानंद का मानना है कि शायद धर्म की संकल्पना स्वप्न से शु डिग्री हो सकती है। मनुष्य के मन को इंद्रिय, तर्क तथा बुद्धि के परे जाने की अद्‌भुत क्षमता होती है। इसलिए मनुष्य यदि नींद में रहा तो उसका मन कार्य करता रहता है। विवेकानंद एडविन अरनॉल्ड लिखित The light of Asia इस पुस्तक का आधार लेते हुए कहते हैं, ''इंदिया तीत अवस्था अर्थात गौतम बुद्ध ने भी

बोधिसत्व के वृक्षतले बैठकर इसी अवस्था में उपदेश दिए है। यह उपदेश बुद्ध के बौद्धिक विचारधारा से प्रवाहित नहीं है, अपितु इंद्रियों के उस पार जाने के क्षमता होने कारण संभव हो सका है।''[1] नीतिशास्त्र यह उपदेश देता है 'मैं नहीं तुम' अर्थात् मनुष्य ने स्वयं के सुख को प्रथम लक्ष्य नहीं मानना चाहिए बल्कि प्रकृति से पर जाने तक मनुष्य मनुष्य है। विवेकानद कहते हैं, मनुष्य कोई कुत्ता या भेड़िया नहीं है इस इंद्रियों को सुख देते रहे। मनुष्य का जन्म ही इसलिए हुआ कि वह इस 84 लाख यवनिओं से बाहर निकलने का तीव्र प्रयास करे और यही मनुष्य के जीवन का उदात्त कार्य है। मनुष्य के अंतरात्मा की शांती ही मनुष्य का धर्म है। विवेकानंद बार-बार यह कहने का प्रयास करते हैं कि मनुष्य को इंद्रिय सुख का अधिक महत्व दिया है अतः जरूरत से ज्यादा दिए गए इस महत्व का परिणाम मानवीय मूल्यों पर होता है।

आज जहाँ धर्म की परिभाषाएं संकुचित, सिमित, कलुषित, म्लान, आक्रमक हो गई है। धर्म के नाम पर देश में वैमनस्य का वातावरण दिखाई देता है। वहीं विवेकानंद कहते हैं प्रत्येक मनुष्य इस बात को समझे कि उसका जन्म धर्म के नाम पर फसाद, उन्माद फैलाने के लिए नहीं हुआ है बल्कि मनुष्य अपने जन्म की सार्थकता समझे वह अंतरात्मा के माहात्म्य को समझे। मनुष्य अपना धर्म समझने का प्रयास करे स्वयं को इस जन्म-मृत्यु से परे ले जाना ही मनुष्य का परम धर्म है। स्वयं की अंतरात्मा को शांती प्राप्त करवाना ही मनुष्य का धर्म है। विवेकानंद कहते हैं, ''धर्म का अध्ययन तथा अनुसंधान पहले से अधिक विशाल होना चाहिए। धर्म के प्रति जॉतियाँ, राष्ट्रीय संकल्पनाएं डूब जानी चाहिए सगुण ईश्वर, निर्गुण अनंत तथा आदर्श मनुष्य यह धर्म में समाविष्ट होने चाहिए। धार्मिक कल्पना विस्तृत, सीमारहित होनी चाहिए।''[2]

विवेकानंद का बताया हुआ एक किस्सा है

एक झक्की नवाब था। रोज रात देर तक गाना बजाना करता और सुबह देर से उठता था। कभी 10.00 कभी 12.00 अपने हिसाब से ऐसा करने से उसकी तबियत बिगड़ गई। चिकित्सकों ने उसे सलाह दी कि तुम्हें रोज सुबह ब्रम्हमुहूर्त पर उठना होगा सुबह 6.00 बजे, नवाब ने उत्तर हाँ, उठ जायेंगे कौनसी बड़ी बात है। नवाब उस रात उसी प्रकार रात 2.00-3.00 बजे तक जागता रहा और सोते समय उसने अपने सेवक को बुलाकर कहा देखो, मुझे चिकित्सकों ने सुबह जल्दी उठने के लिए कहा है तो तुम ऐसा करते जाओ कि मैं जब भी उठूं तुम घड़ी में 6.00 बजा देना, मैं चाहे 10.00 बजे ऊठूं या 12.00 बजे घड़ी में 6.00 बज जाने

चाहिए। यह किस्सा कहने सुनने के लिए निश्चित हास्यास्पद लगता है किन्तु उस किस्से से बोध निकलता है। नवाब ने घड़ी को अपना मालिक नहीं होने दिया... मालिक वह खुद ही बना रहा... घड़ी को हमने खरीदा है या घड़ी ने हमको खरीदा है। इसका तात्पर्य है आजका मनुष्य इतना यंत्रों से घिरा है कि वह उससे बच नहीं सकता लेकिन मनुष्य यांत्रिकता से जरूर बच सकता है और यांत्रिकता से बचने के लिए उसे आध्यात्म की राह को चुनना होगा। लंदन में एक सर्वे हुआ था जिसमें पाया गया कि दस हजार बच्चों ने गाय केवल चित्र में देखी है असलियत में गाय देखी नहीं है और लाखों बच्चों ने खेत नहीं देखे हैं अर्थात् जीवन में इतनी यांत्रिकता आ चुकी है। कल की पीढ़ी को जीवित मनुष्य, जीवित जानवर और जीवित प्रकृति से जुड़ना पड़ेगा और इसके लिए उसे आध्यात्म के रास्ते को अपनाना पड़ेगा। यांत्रिकता जब तक नहीं छूटेगी तब तक मनुष्य जीवन की सार्थकता के मायने खोज नहीं पायेगा।

विवेकानंद ज्ञानयोग के एक अध्याय में कहते हैं, ऋगवेद में 'ने अग्ने' कहा गया है अर्थात हे परमात्मा! मुझे ज्योतिर्मय तन प्रदान कर और जहाँ मृत्यु नहीं होगी ऐसी जगह पर मुझे ले चल। वे कहते हैं हिन्दू धर्म में मनु की कथा हो या बायबल में ॲडम की कथा हो जलप्रलय यह धर्म ग्रंथों में आए ही हैं। विवेकानंद मनुष्य की भाषा पर भी ज्ञानयोग में अपना मत व्यक्त करते हैं। मनुष्य की भाषा अर्थात् केवल और केवल सत्य को व्यक्त करने का प्रयास है। मनु और ॲडम की इन कथाओं की भाषा अति उच्च है। इन कथाओं के पीछे एक महान सत्य छिपा है। विवेकानंद कहते हैं आज के आधुनिक शब्द जो रागदरबारी की तरह लगते हैं इन शब्दों से सत्य कभी बाहर नहीं निकल सकता। ऐसे सारे शब्दो में सत्य का कहीं प्रयोग नहीं होता है। विवेकानंद कहते हैं, ''आजकल लोगों का बुद्ध, मोझेस, ख्रिस्त कहने के बाद नहीं जचता है किन्तु वही टिडॉल, डार्विन कहने के बाद अच्छा लगता है। जो धार्मिक अंधविश्वास था। अब वह वैज्ञानिक अंधविश्वास है। धार्मिक अंधविश्वास ईश्वर उपासना सिखाता है और वैज्ञानिक अंधविश्वास सत्ता की उपासना सिखाता है।''[3] विवेकानंद कहते हैं, ''विचार नाम शक्ति शरीर का निर्माण करती है, शरीर विचार तय नहीं करते, लेकिन इस शरीर में कुछ ऐसा है जो जीवंत है वह है आत्मा। मन अर्थात आत्मा नहीं जो मन की चला सकता है वह आत्मा। मनुष्य की आत्मा यही अंतिम सत्य है। आत्मा क्या है? इस उत्तर पर विवेकानंद कहते हैं कार्यकारण भाव से जो परे है वह आत्मा है। कथित मनुष्य इतना 'मैं' में फसा हुआ है कि जितना वह 'मैं' 'मैं' करेगा वह उतना मृत्यु के निकट पहुँचेगा यदि मनुष्य को मृत्यु के भय से निकलना है तो उसे आत्म

साक्षात्कार होना चाहिए।''[4] मनुष्य को इस बात को समझना होगा कि जब मेरे पेट को अन्न की आवश्यकता होती है तो फिर आत्मा को भी आत्मज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रत्येक मनुष्य आत्मज्ञानी होना चाहिए। मुझे इसका उसका फायदा कैसे होगा, मेरे पास कितने पैसे होंगे यह सत्य से विपरीत बातें है। विवेकानंद कहते हैं, ''प्रत्येक मनुष्य को अपने सत्य को पहचानना चाहिए और जीना चाहिए।''[5] आत्मज्ञान आत्मविद्या से विकसित होता है और तभी आत्मानंद की प्राप्ती होती है। आत्मानंद यही मनुष्य के ज्ञान की उपलब्धि है। आज सत्य समाज में नहीं टिक सकता वह समाज के विपरीत है फिर भी मनुष्य को सत्य का आचरण करना होगा प्रत्येक युग को आत्मज्ञानी लोगों की आवश्यकता होती है विवेकानंद कहते हैं। हे मनुष्य! तुम आत्मा हो तुम अनंत हो, तुम सत्य हो, तुम इस त्रैलोक्य की सबसे बड़ी ताकत हो, तुम जन्म हो, तुम मृत्यु हो सोहं... सोंह...

संदर्भ

1. ज्ञानयोग, विवेकानंद, पृ. 04
2. वही, पृ. 10
3. वही, पृ. 12
4. वही, पृ. 16

5. भक्ति साहित्य तथा मानवीय मूल्य

डॉ. भावेश वी. जाधव
एम टी बी आर्ट्स कॉलेज
सूरत, गुजरात

जीवन के साथ जुड़ा शब्द है 'मूल्य'। चिंतन के क्षेत्र में तो इस शब्द का प्रयोग हमेशा होता है। व्यावहारिक रुप में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। आदर्श और मूल्य में भी सूक्ष्मतम फरक है। व्यावहारिक मूल्य शब्द 'मापन की कसौटी' के तौर पर प्रयोग किया जाता है, पर यहा 'मूल्य' यानी संपूर्ण मानवी व्यवहार से अभिप्रेत है। 'मूल्य' शब्द गौरवता को दर्शाता है। इसे ही अंग्रेजी में ***value*** कहा जाता है। संस्कृत के आधारपर 'मूलेन समोमूल्य' कह सकते हैं। अर्थपरिवर्तन के कारण इस शब्द में बड़ी व्यापकता पाई जाती है। संक्षेप में गुणों को मूल्य कह सकते हैं।

मूल्य की परिभाषा

1. अर्बन ''ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है।''[1]
2. वुड्स, ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत है। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं।''[2]

हमारा साहित्य भले वो किसी भी भाषा में हो उसमें मूल्यों के दर्शन होते हैं। साहित्य और मूल्यों का अटूट रिश्ता है। साहित्य में प्राचीन काल से ही मूल्यों का विवरण हम देखते हैं। प्राचीन काल के साहित्य में हमें भगवान श्रीकृष्ण या आदर्शोन्मुखी राम का गुण वर्णन दिखाई देता है। इन रुपों द्वारा आदर्श व्यक्तित्व में धैर्य, नीति, बुध्दि, वाक्चतुरता आदी 'शाश्वत' मूल्य दर्शाये गये हैं।

मूल्यों का हमेशा आदर होना चाहिए, मूल्यों की रक्षा करना ही मनुष्यता का मुख्य धर्म है। जीवन में सौंदर्य की स्थापना करनी हो तो उसमें मूल्यों का होना

अतिआवश्यक है। मनुष्य ने अपना भौतिक विकास तो बहुत कर लिया है साथ उसे जीवन मूल्यों की भी उतनी ही आवश्यकता होती है। मूल्य तो हमेशा परिवर्तित होते आए है। पुराने मूल्यों को छोड़ परिस्थितीनुरुप हमेशा नित नविन मूल्यों को स्वीकारा गया है। आज मूल्यों का निर्माण स्वयं आदमी खुद अपने लिए कर रहा है। पर ऐसे भी मूल्य है जो चिरंतन शाश्वत रहे है। मूल्यों को अगर हम देखते है उसमें दो प्रकार के मूल्यों के मुख्य भेद नजर आते है।

मूल्यों के भेद

1. शाश्वत मूल्य : इन मूल्यों में किसी भी कारण या परिस्थितीनुरुप परिवर्तन नहीं होता है जिसमें सौंदर्यात्मक मूल्य जैसे सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् का स्थान है। तथा नैतिक मूल्य-त्याग, अहिंसा, सेवा, न्याय आदि।

2. बदलते मूल्य : भौतिक समृध्दि के साथ-साथ इन मूल्यों में बदलाव आते गये हैं।

जैसे-जैविक मूल्य जिनमें आर्थिक मूल्य या फिर अतिजैविक मूल्य सामाजिक, आध्यात्मिक आदि मूल्यों का समावेश हम कर सकते हैं।

साहित्य में तो हर विधा में अपनी-अपनी शैली के अनुसार मूल्यों को प्रतिष्ठित किया गया है। समय की माँग के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है।

भक्ति से ही मनुष्य में मानवीय मूल्यों की स्थापना की जा सकती है। भक्ति साहित्य भक्ति और मानवीय मूल्यों की स्थापना करने का प्रमुख माध्यम है। इनकी रचना का प्रमुख उद्देश्य ही लोगों को भक्ति मार्ग पर लाकर समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना करना है।

मानव मूल्य हमारी संस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, सामाजिक विश्वासों, मान्यताओं और आदर्शों का निचोड़ होते हैं। हमारे देश में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्', 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई पर पीड़ा सम नहि अधमाई', 'अतिथि देवो भवः', 'आत्मवत् सर्व भूतेषु', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'परोपकाराय सतां विभूतयः'। जैसे वाक्य सामाजिक जीवन के प्रेरक रहे हैं। सत्य, अहिंसा, परोपकार, सहिष्णुता, नैतिकता, ईमानदारी, सेवा, सदाचार आदि को मानव मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है।

साहित्य में मानव-मूल्य सर्वोपरि है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग, परिवेश एवं देश के प्रति सचेत होकर मूल्याभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक साहित्यकार पर तत्कालीन परिवेश और मान्यताओं का प्रभाव पड़ता है, जिसका प्रतिबिम्ब उसके

साहित्य में दृष्टिगत होता है। इतर शब्दों में यदि साहित्य का सृष्टा मानव है तो मानव का चित्रण करना ही साहित्य का उद्देश्य है इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्य के द्वारा ही मानव-मूल्यों को अभिव्यक्ति मिलती है। साहित्य का मानव जीवन से चिरंतन एवं घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध हिन्दी साहित्य में भी देखा जा सकता है।

''देख तेरे संसार की हालत
क्या हो गई भगवान
कितना बदल गया इंसान।''

आज वैश्वीकरण की आँधी में बुलेट ट्रेन की भाँति धुँआधार दौड़ती जिंदगी में यदि कुछ करीने से संजोकर रखने की जरूरत है तो वह है हमारे अनमोल मानव -मूल्य जिन्हें हम मच-मोर... मोर, मोर, मोर के झगड़ैल धूल में रोलते जा रहे हैं। हमारा जीवन स्वार्थ, असंतोष, अशांति के कारण बेढंगा-सा हो गया है। इंसान तुच्छ स्वार्थों के कारण अपने ईमान की बोली लगा रहा है। नवीन मूल्यों के निर्माण में उपयुक्त प्राचीन मानव-मूल्यों को ध्वस्त करने में मनुष्य कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रहा है। मनुष्य मानवता की बली चढ़ाता जा रहा है और प्रेम व अमन का दीप बनकर उजाला करने का धर्म भूलता जा रहा है। वह अपने तक ही सिमट कर रह गया है।

''प्रेम अमन का दीप जलाएँ, घर-घर में उजियारा हो
मानवता ही धर्म हमारा, मानवता ही नारा हो।''

सच्ची मानवता का नारा बुलंद करने वाला मध्यकाल युग था जिसकी केंद्रीय धुरी मानवीय चिंता थी। मध्यकाल के सभी संतों और भक्त कवियों ने इंसान को पशुता त्याग मनुष्यता पर टिके रहने का नारा बुलंद किया था। आज इन्हीं सच्चे संतों की आवश्यकता फिर से जान पड़ती है ताकि इस अमानवीयता से जलते संसार को, भभकते अंगारों से बचाया जा सके।

''आग लगी आकाश को, झड़-झड़ पड़े अंगार
संत न होते गर जगत में तो जल मरता संसार।''

मध्यकालीन युग से आधुनिक काल में मूल्य संबंधी धारणा आसमान से उतरकर उस जमीन पर आती है जिसकी नींव नीत्शे के 'ईश्वर की मृत्यु' के घोषणा पत्र से शुरू होती है और मानव मूल्यों के नियामक ईश्वर न होकर मनुष्य बन जाता है। सार्त्र का इसी विषय पर मानना है कि :

''मैंने ईश्वर को अपनी विचारधारा से बहिष्कृत कर दिया है। अतः उसके स्थान की पूर्ति के लिए किसी न किसी को तो स्थापित करना ही होगा। मनुष्य

ही एक ऐसा प्राणी है जिसे इस स्थान पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है और मनुष्य ही मूल्य निर्माता है।''[1]

समाज की आर्थिक संरचना मूल्य निर्माण का आधार होती है। मूल्य व्यक्ति और वस्तु दोनों की सहभागिता के द्वारा निर्णित होता है। मूल्य परिवेश, समाज, और समय से जुड़े होने के कारण इनमें परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों में भी परिवर्तन होता जाता है। नए मूल्यों की सृष्टि होती है। मानव-मूल्य और साहित्यिक मानव-मूल्य एक ही होते हैं क्योंकि मनुष्य और सहित्य दोनों ही एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। मानव मूल्यों की इसी बनती-बिगड़ती प्रक्रिया को डॉ. धर्मवीर भारती इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

''मानव-मूल्यों को मनुष्य की चेतना ने तीन धरातलों या संबधों के आधार पर मान्यता दी है वे हैं व्यक्ति और उसका स्वयं का संबंध, व्यक्ति और विश्व का संबंध तथा व्यक्ति और विश्वातीत का संबंध। मानव-मूल्य इन तीनों धरातलों पर अवस्थित है; बनते हैं मिटते हैं और फिर बनते हैं, यह क्रम निरंतर चलता ही रहता है।''[2]

जिस प्रकार समाज में आर्थिक संबंध एक जैसे नहीं होते ठीक उसी प्रकार हर युग की रचना और कला भी एक जैसी नहीं होती और इनसे निर्मित मूल्य भी एक जैसे नहीं होते। भक्तिकाल की ज्ञानमार्गी शाखा से होते हुए प्रेममार्गी शाखा, रामकाव्यधारा, कृष्णकाव्यधारा और रीतिकाल की रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त और नीतिकाव्यधारा तक आते-आते मानव-मूल्यों में भी बदलाव आता गया।

भक्तिकाल सामंती काल था। सामंती समाज व्यवस्था में मूल्य और समाज दोनो का द्वंद्वात्मक संबंध है। समाज में अनेक तरह के परिवर्तन तो आए लेकिन सामाजिक मूल्यों में कोई बदलाव देखने को नहीं मिला। समाज उन्हीं पुरानी मान्यताओं, कुरीतियों से मुक्त नहीं हो पा रहा था। अन्याय, अराजकता, बहुदेववाद, कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर की स्थिति इतनी बढ़ गई थी कि मध्यकालीन समाज कलिकाल में तब्दील हो रहा था। कबीर, रैदास, धन्ना, गुरू नानक देव, तुलसीदास, मीरा, जैसे संतों और कवियों ने मानवीय मूल्यों (प्रेम, सहिष्णुता, मधुरता, करुणा, अहिंसा, अहंत्याग, सत्संग, समानता और सत्य आदि) की रचना और प्रतिष्ठापना पर जोर दिया। कबीरदास ने अहिंसा का समर्थन करते हुए जीव हत्या का विरोध किया है वो कहते हैं कि :

''दिन को रोजा रखत है रात हनत है गाय
यहां तो खून वहां बंदगी कैसे खुशी खुदाय''

कबीरदास ही नहीं भक्तिकाल के प्रायः सभी कवियों ने प्रेम के मार्ग में अहं त्याग को अनिवार्य माना है और गुरू, भक्ति तथा सत्संग की महिमा को श्रेष्ठ

स्थान दिया है।

अहंत्याग *''कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं*
सीस उतारै भुई धरै, सौ पैठै घर माहिं'' (कबीरदास)

भक्ति, *''सौ बताने की एकै बात*
सूर सुमरि हरि-हरि दिन-रात। (सूरदास)

और, *"म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरा कुणाँ कूयाँ''* (मीरा)

भक्तिकाल का फलक बहुआयामी है। अन्य भक्त कवियों के समान गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य में भी समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता के स्वर मुखरित होते हैं। तुलसी ने सगुण-निर्गुण में कोई भेद नहीं स्वीकारा और वे अपने काव्य में समाज के कटु यथार्थ के दर्शन भी कराते हैं। तुलसीदास जी मर्यादावादी तत्वों के संरक्षक कवि के रूप में दिखाई देते हैं। यथा :

''ग्यानहिं भक्तिहिं नहीं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव बेदा।''

और, *"खेती न किसान को,भिखारी को न भीख भली*
बनिक को बनिज न, न चाकर को चाकरी।'' (तुलसीदास)

समाज में समानता और स्वतंत्रता का अधिकार पाने की ललक और जिद्द इन भक्त कवियों में देखने को मिलती है। समाज में व्याप्त सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रति अस्वीकृति का भाव ही समाज में एकता, भाईचारा और सद्भाव आदि की निर्बाध प्रवाहित धारा का सूत्रपात कराता है। जाति-पाँति, ऊँच-नीच, वर्णव्यवस्था, बाह्याडम्बरों के प्रति प्रबल विरोध ही समाज में मानव-मूल्यों की स्थापना में सहायक हो सकता है।

''जाति-पाति पूछै नहीं कोय
हरि को भजै सो हरि का होय।''

और सूरदास के काव्य में भी ईश्वर को लौकिकता प्रदान कर सखा के रूप में स्वीकार किया है सखा भाव में समानता का भाव छिपा होता है उसमें किसी भी प्रकार के भेद के लिए कोई जगह नहीं होती है। सूरदास जी कहते हैं :

''खेलत में को काकौ गुसैया
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करन रिसैया
जाति पाति हमतै बड़ नाहि, नाहि बसत तुम्हारी छैयां।''

भक्तिकाल में सामाजिक रूढ़-परम्पराओं और सामंती युग की क्रूर जंजीरों से मुक्ति का स्वर भी मिलता है। यहां स्त्री मुक्ति का स्वर भी मुखर दिखाई देता है। स्त्री को प्रेम करने की स्वतंत्रता सूरदास की गोपियों की बोली में मुखर रूप से उजागर होती है। यथाः "ऊधौ मन नाहिं दस-बीस'', ''आयौ घोस बड़ौ व्योपारी'',

''काहे को गोपीनाथ कहावत'' और ''निरगुन कौन देस को बासी'' आदि। मीराबाई का काव्य तो सामंती व्यवस्था से स्वतंत्रता की छटपटाहट से कहीं आगे का काव्य ठहरता है। यहाँ मुक्ति का कठोर एवं कटु संघर्ष है, चाहे वह वेश-भूषा, रहन-सहन, मित्रता, प्रेम आदि के फैसले हो उन्होंने लीक से हटकर लिए और मुक्त होकर अपना जीवन जीकर एक अलग अनूठी चाल चली।

''राणा जी म्हानै या बदनामी लगे मीठी
कोई निंदों कोई बिंदो मै चलूंगीं चाल अनूठ।'' (मीरा)

इस काल में प्रेम जैसा मूल्य अधिक विस्तार पाता है। प्रेम कई स्वरूपों में निखरता है जितनी गहराई से इसे नापेंगे उतना ही यह निखरता जाता है, "ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई।'' प्रेम सूफी कवियों का सर्वोत्तम मूल्य है। यहाँ प्रेम अलौकिक होकर भी लौकिक भूमि पर खड़ा है। लौकिक प्रेम होने पर भी उसमें स्वार्थ, अहंकार, कामवासना नहीं बल्कि प्रणय-भावना, मधुरता, साहस, शौर्य, संघर्ष, बलिदान आदि मानवीय-मूल्य समाहित है। "पिउ सो कहहु संदेसड़ा, हे भौरा हे काग। सो धनि विरही जरि मुई तेहिक धुआँ हम लाग।'' और यही प्रेम रीतिकाल के रीतिमुक्त धारा के कवियों में भी देखने को मिलता है। यह प्रेम वहाँ एकनिष्ठ, स्वच्छंद, संवेदनशील, पुरुष का विरह का करूण रूदन, आत्मनिवेदन और 'जान है तो जहाँ है' वाला प्रेम है। यथा :

''अति सूधो स्नेह कौ मारग है, जहाँ नेकु सयापन बाँक नहीं।
यहाँ साँच चले तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं।'' (घनानंद)

रीतिबद्ध काव्यधारा में भी प्रेम का जो एक दूसरा रूप भी उद्घाटित होता है वह है राष्ट्रप्रेम। भूषण, गंग, बिहारी आदि ने राष्ट्र के प्रति बलिदान, त्याग, आत्मसमर्पण और राष्ट्रीयता को अपने काव्य में स्थान दिया है। भूषण का काव्य राष्ट्रीयता से सम्बधित मानव-मूल्यों से भरा पड़ा है। "सिवाजी कै सराहौ कि, सराहौ छत्रसाल कौ,' ''इंद्र जिमि जंभ पर...सेर सिवराज है।'' आदि के माध्यम से राजाओं के हृदय में कर्तव्य, प्रेरणा और उत्साह का संचार किया है।

सार्वभौमिक मानव मूल्यों की प्रतिस्थापना में रीतिकालीन नीतिकवियों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने अपने काव्य में मानवीय मूल्यों का धार्मिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक और आर्थिक पक्ष भी उजागर किया है और मनुष्य को मनुष्य बने रहने की प्रेरणा दी है। आज के मनुष्य में स्वार्थ, लालच, अकर्मठता, संत्रास, अकेलापन, विलास आदि बुराईयाँ इतनी बढ़ चुकी है जो कि ये मनुष्य को संवेदनहीन और हृदयहीन बनाती जा रही है। सुरेश सिन्हा के शब्दों में कहा जा सकता है, "आज समाज से सत्य खंडित हो रहा है, संघर्ष इतना कटु हो गया है कि आदमी अपने ही भीतर कई मौतें मर रहा है। मनुष्य का विरोधी संस्थाओं और रूढ़ एवं अंध परम्पराओं द्वारा स्थापित वर्जनाओं ने मानवीयता का जबरदस्त अपहरण कर लिया है और मानव-मूल्यों के सभी संदर्भ अंधी गुफाओं में भटक गए हैं।''[3]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि आदर्शहीनता और मर्यादाहीनता का ऐसा युग हमारे देश में फिर से अवतरित हुआ है जिसमें परंपरा और आधुनिकता की टकराहट, विज्ञानवाद और मानववाद की टकराहट तथा समाज और व्यक्ति की टकराहट उन दो पक्षों के समान है जिसने मर्यादा की उस पतली-सी डोरी को तोड़ा जिस पर मानव-मूल्यों पर टिकी मानवता कायम थी। अतः हमें मध्यकालीन कवियों और भक्तों के सार्वभौमिक मानव-मूल्यों के पाठ को फिर से अपने अक्स में उतारने की आवश्यकता है। पहले एक अच्छा इंसान बनना जरूरी है इंसानियत का विकास हृदय में होना चाहिए बाकी सब विकास यात्रा बाद में।

''कुछ भी बनो
मुबारक है... पर
पहले इंसान बनों।''

भारतीय साहित्य में मानव मूल्यों को प्रतिष्ठा मिली है और मूल्यवादी साहित्य ने समाज को हमेशा ही प्रेरणा दी है। भारतीय साहित्य केवल कला कला के लिए सिद्धांत का अनुगमन नहीं करता। *'शिवेतरक्षतयें '* की शास्त्रीय कल्पना के साथ सांस्कृतिक मूल्यों का समुच्चय, परंपरा से संपृक्ति और जीवन मूल्यों की सुरक्षा ही भारतीय साहित्य का ध्येय रहा है।

संदर्भ

1. भक्तिकाव्य और मानव-मूल्य, डॉ. वीरेंद्र मोहन, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण 1986, पृ. 15
2. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, तीसरा संस्करण 1999, भूमिका से
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ, डॉ. भगीरथ बड़ोले, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1983, पृ. 273
4. हिंदी साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति

6. निराला के साहित्य में मानवीय मूल्य

प्रा. डॉ. अशोक तुकाराम जाधव
प्राध्यापक एंव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कै. बाबासाहेब देशमुख गोरठेकर
महाविद्यालय, उमरी, ता. उमरी, जि. नांदेड

भारत देश एक ऐसा देश है। जो लगभग विश्व में अपना एक अलग स्थान निर्माण करता है। यहां पृथक पृथक संस्कृति के लोगों का निवास है। हर कोई वेदना और संवेदना से जुड़ा है। जहां वेदना एवं संवेदना होती है। वहां मानवीय मूल्य की बात होती है अर्थात् मानवीय मूल्य आ जाता है। इंसानों का जीवन नव रसों से भरा है। वैसे ही जीवन में मूल्यों का होना जरूरी होता है। तभी उसका अपना वजूद होता है। ''मानवीय मूल्य वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श है जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वह मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण समझते है।''[1] ''मनुष्य को मूल्य अपने जीवन से, पर्यावरण से, अपने आप से, समाज और संस्कृति से और मानव अस्तित्व एवं अनुभव से भी प्राप्त होते हैं मानवीय मूल्य व मानवीय मान लक्ष्या आदर्श है, जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है।''[2] इस प्रकार से हम मानवीय मूल्य क्या है यह जान सकते हैं। इसका संबंध मानव से ही आ जाता है।

मूल्य शब्द का अर्थ

''पाणिनि की धातु है। मूल प्रतिष्ठा एवं इसमें जो मूल शब्द के बाद यत प्रत्यय लगाते हैं तब मूल्य बनता है। इससे शब्द बनता है। मूर्ति जिसका अर्थ होगा प्रतिष्ठा पर यति अर्थात् जो भी हमारे जीवन की प्रतिष्ठा है या जिस चरणों से

हमारा जीवन प्रतिष्ठित होता है उन्हें हम जिगर प्रस्तावित करते हैं। तो वही मूल्य कहलाते हैं इसके पहले मूल रहता है।''[3]

समष्टि में मानवीय मुल्यों को देखना है समझना है तो निम्नलिखित मानव व्यवहार में देखा जा सकता है।

1) प्रेम
2) अहिंसा
3) शांति
4) सत्य
5) आदर
6) करुणा
7) निस्वार्थ
8) समानता
9) कानून के प्रति सम्मान
10) मानवतावाद
11) आदि

अतः हम कह सकते हैं कि, संपूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु भाव रखना सबसे बड़ा मानवीय मूल्य है।

हिंदी साहित्य में भक्ति काल से लेकर आधुनिक काल तक या अभी तक भी मानवीय मूल्यों को सामने रखकर ही साहित्य सृजन किया जाता है। मनुष्य ही मानव समाज की रचना करता है। समाज से मनुष्य सब कुछ सीखता है, जो समाज में मानवीय मूल्यों को संभालते हुए रह सकता है। जैसे :

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।'' -तुलसीदास जी

तुलसीदास जी कहते हैं, 'यथा राजा तथा प्रजा' राम ने आचरण द्वारा प्रजा समाज को अदृश्य प्रदान किया। स्वार्थ संकुल क्षुद्र हृदय उन राम के विशाल मानस की छांह तक नहीं छू सकता, जिस का कहना था कि, लोकाराधना के लिए स्नेह, दया, सब के अथवा जानकी को भी छोड़ना पड़ जाए तो मुझे व्यथा नहीं होगी अर्थात् राम अपनी जनता हेतु अपना सर्वस्व सुख त्याग कर जनता के सम्मान अपना सुख और दुख मानता है। वे राजा होकर भी प्रजा के समान जीवन बिताता है। तुलसीदास अपने इस रचना से यही कहना चाहते हैं कि, मन की संवेदना से ही संवेदना जुड़ जाती है और मानवीय मूल्य दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि, राम लोकनायक अधिक थे, शासक कम इसलिए यहां मानवीय मूल्यों का निर्माण होता है।

मानव जीवन में 'जीवन मूल्य' का बहुत महत्व है। इस मानवीय मूल्यों से व्यक्ति का जीवन सकारात्मक हो जाता है। क्षमता और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करता है। कबीर ने अपने साहित्य में कहा है, जिनके द्वारा समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है, उनकी प्रेरणा किसी व्यक्ति का सुधार नहीं अपितु व्यष्टि को पतन के पथ पर से रोकना है। मानवीय वेदना से मानवीय मूल्यों को बचाना है। समष्टि को सही राह की दिशा पर ले जाना है। जैसे :

दुर्लभ को न सताइए, जाकी मोटी हाथ।
भई खाल की सांस सो, सार भसम हो जाए।

भक्ति काल के बाद हम आधुनिक काल को देखेंगे तो निराला जी की कविताओं में कहते हैं :

''क्या यह वही देश है,
भीमार्जुन आदि का कर्ति क्षेत्र''[4]

यह वही पावन भूमि है, जो भीमार्जून का किर्ति क्षेत्र है। जहां कृष्ण के श्री मुख से गीता का शाश्वत कर्म संदेश मानवता के उज्जवल भविष्य के लिए मार्गदर्शक बन गया है।

''नहीं आज'' का मत हिंदू, आज का मुसलमान
आज का ईसाई, सिक्ख, आज का यह मनोभाव
आज की यह रूपरेखा, नहीं यह कल्पना
सत्य है मनुष्य, मनुष्य के लिए
बंद है जो दल अभी किरण-सम्वत से
खुल गए वे सभी।''[5]

निराला की काव्य साधना राष्ट्र के भौतिक संकुचित घेरे को तोड़कर सार्वभौमिक और विशुद्ध मानवीय भूमि की साधना करता है।

''वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।''[6]

इस कविता में कवि नायिका की वेदना से संवेदना को देखता है। जो इलाहाबाद के रास्तों पर भरी धूप में रास्ते पर पत्थर तोड़ रही हैं। बिना किसी शिकायत से ना किसी को देखते हुए महज अपने कामों में मग्न है। इसी को देख निराला ने नायिका की संवेदना से मानवीय मूल्यों के कारण उसकी संवेदना को अपनी रचना के माध्यम से दृष्टिगोचर करते हैं। या मानवीय मूल्यों को देखा जा सकता है।

किस प्रकार से उन्होंने उस नारी को कर्म करते हुए देखा वह भी दुनियादारी से दूर कहीं दूर अपनी नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए मानवीय मूल्यों को निभाते हुई है।

कुकुरमुत्ता कविता में निराला ने सामंती सभ्यता एवं पशुता पर करारी चोट की है। अतः मानवीय मूल्यों का समर्थन किया है। वह गुलाब को कहते हैं-तूने जो यह रंग, खुशबू पाई है ना, यह कई गरीब लोगों का खून चूस कर प्राप्त हुआ है। तूने कई लोगों को गुलाम बनवाया है, यहां मानवीय मूल्यों को तोड़ दिया है। सामंतियों को कवी का कहना है कि, अगर तुमने मानवीय मूल्यों को समझ कर लिया तो सर्वसाधारण आम आदमी का शोषण नहीं कर पाते क्योंकि, अपने मानवीय मूल्यों को समझ कर ही नहीं लिया है। जैसे :

''अबे, सुनबे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इत्तराता है केपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम।''[7]

निराला के काव्य पर हम कह सकते हैं कि, एकता, समानता और सभी के प्रति प्रेम भाव। 21वीं सदी पर मालवीय मूल्यों को नहीं देखा जा सकता है। बल्कि भोग वादी संस्कृति पैदा हो रही है। आधुनिक जीवन शैली अपनाने के कारण आदमी सहज, स्वाभाविक जीवन आनंद से दूर दूर जाता दिखाई दे रहा है।

वर्तमान में हर कोई व्यक्ति समाज से दूर रहना चाहता है। उसे लग रहा है कि, समाज मुझे धोखा दे सकता है। व्यक्ति घर से बाहर निकलते ही सफर करते समय हर जगह पर देखता है कि, हमारे आस पास कौन है, क्या कर रहे हैं। उसे शक की नजर से देख रहा है। आदमी आदमी से डर रहा है। प्रकृति का नियम है कि, एक दूसरे पर प्रेम करना चाहिए। ऐसा नहीं उसके विरुद्ध हो रहा है। ऐसा दर्शाते हुए रचनाकार कहते हैं :

''कोई जंजीर बांध रहा है।
कोई जमा रहा है बक्स् माथे के नीचे
कोई जेब टटोलता है निश्चित
कोई पत्नी से कहा है
उतार लो झुमका वही।''[8]

इस तरह से हर कोई नैतिकता के वस्त्र त्याग दे रहा है। हम ऐसे समाज में जी रहे हैं, जहाँ-नैतिकता, वेदना, संवेदना आदि शब्द अर्थहीन हो गए है।

मनुष्य चांद पर मकान बना रहा है। पानी में विवाह बना रहा है। ब्रह्मांड के रहस्य उनको परत दर परत खोल दे हमारे रूढियों, परंपराओं को तोड़ दिया है। किंतु मानवता धर्म का पालन करने में पूर्णता सफल नहीं हो पाया है। वह एक दूसरे के साथ प्यार कम, द्वेष करते हैं। इस द्वेष के कारण हिंसा को अपनाते हैं। हिंसा के कारण शांति भंग हो जाती है। एक दूसरे का आदर नहीं करते हैं। एक दूसरे के प्रति करुणा का भाव नहीं रखते हैं हर कोई मानवीय मूल्यों का हनन कर रहा है।

आधुनिक मनुष्य की रचनात्मक दृष्टि को समझने के लिए उसके संवेदनशील मन को समझकर लेना पड़ेगा। हर कोई धन के पीछे लगा है धन के कारण नैतिक मूल्यों के साथ समझौता कर रहा है। पशु बन रहा है-एक दूसरे को वेदना पहुंचा रहा है। वह तन मन से नहीं महज धन से जुड़ने की कोशिश कर प्रेमभाव को भूलकर बाजारूपन ला रहा है। यहां मूल्य शब्द का प्रयोग भी अर्थ नहीं रखता है। क्यों कि, जहां बाजारूपन आ जाता है। वहाँ नैतिक मूल्यों को देखा नहीं जाता है, अपितु फायदे तोटे की बात होती जाती है।

''प्रकृति की सुंदरता ने ही मनुष्य को सुसंस्कृत बनाया है। प्रकृति प्रदूषित होती जाएगी वैसे मनुष्य निकृत बनता जाएगा। हमें प्रकृति को सुंदर स्वच्छ रखना होगा। प्रकृति की सुंदरता को देख पंत जी कहते हैं :

''सुंदर है विहग सुमन सुंदर
मानव तुम सबसे सुंदरतम।'' [9]

मनुष्य और मूल्य यह दोनों का रिश्ता कायम है। पशु को ज्ञान नहीं है। इसलिए उसे प्रकृति में हम से अलग रखा है वैसे पशु और मानव में बहुत कुछ सामान गुण दृष्टिगोचर होते हैं। महज मानव के पास ज्ञान ही ऐसा शस्त्र है जो उसे पशु नहीं कहा जा सकता है।[9] जैसे :

आहार, निद्रा भय मैथुनच
सामान्य में तत पशु भी नराणा
ज्ञानम, नराना अधिकम् विशेषः
ज्ञानेन शून्यः पशुः सम्मान।

अर्थात् आहार, निद्रा, भय, और मैथुन यह चारों सामान्य रूप से मनुष्य तथा पशु दोनों में पाए जाते हैं, केवल ज्ञान ही मनुष्य के पास अधिक है जो इसे पशु से अलग करता है। इस से पता चलता है कि, ज्ञान का मनुष्य जीवन में कितना महत्व होता है।

संदर्भ

1. WWW.google.com
2. WWW.google.com
3. WWW.google.com
4. साहित्य और मानवीय संवेदना, डॉ. सदानंद भोसले, पृ. 85, विकास प्रकाशन, कानपूर, वर्ष 2012
5. वही.
6. निराला संचयिता-सपा. रमेशचंद्र शाह, पृ. 107, वाणी प्रकाशन, इलाहबाद
7. साहित्य और मानवीय संवेदना, डॉ.सदानंद भोसले, पृ. 128, विकास प्रकाशन, कानपूर
8. वही. पृ. 136
9. वही. पृ. 128

7. साहित्य में मानवीय मूल्यों का महत्त्व

डॉ. आभा त्रिपाठी
हिन्दी भाषा शिक्षिका
जमनाबाई नरसी स्कूल
गिफ्ट सिटी, गांधीनगर (गुजरात)

'मूल्य' शब्द से तात्पर्य किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

साहित्य में मानवीय मूल्य सर्वोपरि है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग, परिवेश एवं देश के प्रति सचेत होकर मूल्याभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक साहित्यकार पर तत्कालीन परिवेश और मान्यताओं का प्रभाव अवश्य पडता है, जिसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में दृष्टिगत होता है। दूसरे शब्दों में यदि साहित्य का स्रष्टा मानव है, तो मानव का चित्रण करना ही साहित्य का उद्देश्य है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य के द्वारा ही मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति मिलती है। साहित्य का मानव जीवन से चिरंतन एवं घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह सम्बन्ध साहित्य में देखा जा सकता है।

जीवन में श्रेष्ठता को बनाएं रखने के लिए जिन मूल्यों, मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है, उन्हीं को मानवीय मूल्य कहते हैं। ये मूल्य ही आचार संहिता है, इन्हीं को नीति भी कहा गया है। यदि ये कुछ नीतियां, मर्यादाएं, व्यवस्थाएं अनुशासन न होते, तो मानव समाज कभी सभ्य नहीं बन पाता। सभ्यता का मूल ये नीतियां ही हैं। इन्हीं पर संस्कृति का भव्य प्रसाद टिका हुआ है। मानवीय मूल्य हमारी संस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, सामाजिक विश्वासों, मान्यताओं और आदर्शों का निचोड होते हैं।

हमारे देश में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' 'परहित सरिस धर्म नहि भाई परपीड़ा सम नहि अथमाई', 'अतिथि देवो

भवः', 'आत्मयत् सर्व भूतेषु, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'परोपकाराय सतां विभूतयः'। जैसे सामाजिक जीवन के प्रेरक वाक्य रहे हैं। सत्य, अहिंसा, परोपकार, सहिष्णुता, नैतिकता, ईमानदारी, सेवा, सदाचार आदि को मानवीय मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए भक्तिकालीन कवियों ने काव्य-प्रणयन किया। इन कवियों में मुख्य रूप से कबीरदास, दादूदयाल, गुरूनानक, रविदास जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रसखान का स्थान प्रमुख हैं। ये कवि तत्कालीन जनता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे हैं तथा सभी ने अपने काव्य में मानवीय गुणों का समावेश किया है।

''भक्ति साहित्य में भारतीय संस्कृति और आचार-विचार की पूर्णतः रक्षा हुई है। भक्ति-काव्य जहां उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है, वहां उसमें उच्च कोटि के काव्य के दर्शन भी होते हैं, इसकी आत्मा भक्ति है, इसका जीवन स्रोत रस है, इसका शरीर मानवीय है। रस की दृष्टि से भी यह साहित्य श्रेष्ठ है। यह साहित्य एक साथ तदय, मन और आत्मा की प्यास को तृप्त करता है।'' भक्तिकालीन कवियों के काव्य में मानवीय मूल्य अधिक प्रतिष्ठित हुए हैं। इन मूल्यों में-ईश्वर भक्ति, गुरु-महिमा, भक्ति-भावना, सत्संग, सत्य, अहिंसा, प्रेम, अहंकार-त्याग, आडम्बर वरोध, समन्वय-भावना आदि को श्रेष्ठ माना है।

भारतीय साहित्य आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानवीय मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करता आ रहा हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानवीय मूल्यों की सुदृढ़ आधारशिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारे साहित्य की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ किया होगा। चार वेद और एक सौ आठ उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाए। यहां यह कहना न होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार में वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मानवीय मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं।

भारतीय समाज में मूल्यों का प्रमुख स्रोत धर्म रहा है। धर्म मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है। मानवीय मूल्यों का प्रारंभ परिवार से होता है। परिवार के दायरे से बाहर

निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम, प्रांत, देश सब उन व्यापक समाज के घटक हैं। अतः 'साहित्य को समाज का दर्पण' कहा जाता है। उपनिषदों के 'सत्यम् बद् धर्मचार' से लेकर संत कबीर तथा गोस्वामी तुलसीदास से लेकर रहीम के नीति काव्य तक व्याप्त नीति साहित्य मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष प्रयास है।

आधुनिक साहित्य में 'मानवीय मूल्य' शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानवीय व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है। 'मानवीय मूल्य' शब्द की आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। आज मनुष्य पुराने विचारों को काल-बाह्य समझने लगा है, जिसके कारण प्राचीन मानवीय मूल्य अस्वी त होते रहे हैं और नए-नए मानवीय मूल्य स्वीकार किए जा रहे हैं। भारतीय समाज में चातुर्वर्ण्य के अनुसार एक अति सुन्दर विचार हमारे सामने आता है :

''आहारनिद्राभय मैथुनंच, सामान्यमेतम् पशुभिः नराणाम
धर्मोहितेषु अधिको विशेषः धर्मणीरनः पशभिः समान।''

यहां धर्म परंपरा को उत्कृष्ट मूल्य मानते हुए कहा गया है, ''धर्म के अभाव में मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ नहीं है। अर्वाचीन साहित्य में भी मानव व्यवहार को दिशा देने का बहुत प्रयास हुआ है, पाश्चात्य विद्वानों ने अच्छे-बुरे की छानबीन मूल्य के संदर्भ में की है।''

'अर्बन' के अनुसार मानवीय मूल्य की तीन परिभाषाएं हैं :

प्रथम परिभाषा के अनुसार

''मानवीय इच्छा की तृष्टि करें वही 'मूल्य' है।''

द्वितीय परिभाषा के अनुसार

''मूल्य वह वस्तु है, जो जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाती है और उसे सुरक्षित रखती है।''

तृतीय परिभाषा के अनुसार

''जीवन मूल्यों के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं।'' वस्तुतः मानवीय मूल्यों को परिभाषा की संकुचित सीमा में सही-सही नहीं बांधा जा सकता । हर एक समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार मूल्यों का निर्माण करता है।

डॉ. धर्मवीर भारती भारतीय परंपरागत मूल्यों के बारे में कहते हैं, ''पुराने मूल्य अब मिथ्या लगने लगे हैं। इस प्रकार की श्रद्धा, आस्था और करुणा अमानवीय वृत्तियों को जन्म देती है,

''वे मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने की बजाय उसको विकलांग बनाते हैं।'' जैसे- श्रद्धा, आस्था, करुणा दया आदि मूल्य आज समाज में कम नजर आते हैं। उत्कर्ष ही मानवीय मूल्यों की कसौटी है, उन व्यवहारों को ही मानवीय मूल्य माना जाता है। हर एक धर्म में कुछ नैतिक आदर्श होते हैं, उनके आधार पर ही समाज में अनेक मूल्यों का प्रचलन होता रहता है।

'मानवीय मूल्य' मानव को स्थायित्व प्रदान करते हैं। मानवीय मूल्यों द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। मानवीय मूल्यों का प्रश्न केवल आयामों के लिए महत्व रखता है, ऐसा नहीं है। साहित्य के प्रत्येक अध्येता के लिए वह एक गुरुतर प्रश्न है और लेखक के लिए तो उसकी मौलिकता असंदिग्ध है, क्योंकि रचनाकार अपनी रचना का सबसे पहला और सबसे अधिक निर्मम परीक्षक है।

प्राचीन युग में 'मानवीय मूल्यों का निर्धारण', राज्य, धर्म एवं समाज के द्वारा किया जाता था परन्तु आज वैसा कुछ भी नहीं, आज प्राचीन और नवीन मूल्यों में संघर्ष देखा जाता है। डॉ. देवराज उपाध्याय इस मत को व्यक्त करते हुए कहते हैं मनुष्य अपना कर्ता-धर्ता स्वयं है, अर्थों तथा मूल्यों का निर्णायक भी वहीं है। पुराने और नये मूल्यों का संघर्ष आज अत्यंत प्रखरता से अनुभव किया जा रहा है। साहित्य पाठकों को जीवन के यर्थाथ से जोड़ता है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है।

साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार आज भी मानवीय मूल्य ही है। साहित्य जो मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। साहित्य और मानवीय मूल्यों का शाश्वत संबंध है। काव्यशास्त्र में ''साहितस्य भायः इति साहित्यम्।'' के अनुसार साहित्य में हित की भावना का होना अनिवार्य है।

साहित्यकार का उद्देश्य

साहित्यकार का उद्देश्य कृति के द्वारा आनंद की सृष्टि तथा समाज मार्गदर्शक के रूप में होता है। डॉ. जगदीशचंद्र गुप्त का इस संदर्भ में मत है, ''कला और साहित्य दोनों एक प्रकार से जीवन का ही परिविस्तार करते हैं, मानवीय मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही आदर प्रदान करे जितना मानवीय मूल्यों को, क्योंकि तत्वतः दोनों एक ही हैं।''

साहित्यिक या कलात्मक निर्मिति के अंतर्गत साहित्य के कलात्मक मूल्यों की खोज तथा संवर्धन किया जाता है। साहित्य में मानवीय मूल्यों का जन्म कल्पना से नहीं होता, बल्कि साहित्यकार के अनुभूत सत्य से होता हैं, जो उसकी आत्मोपल की प्रक्रिया में स्थापित होकरअपनी सुंदरता महत्ता और उदारता के कारण समाज द्वार मानवीय मूल्यों के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

साहित्य और मूल्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य हमारे अव्यक्त भावों को व्यक्त करता है। साहित्य में जीवन के विविध रूप हमारे सामने आते हैं। साहित्य का आधार मनुष्य और उसके अपने यथार्थ के बीच जीवित संबंधों में है। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से आज प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यकरण की स्वतंत्रता पर बल दिया जा रहा है लेकिन साहित्य का संबंध व्यक्तिगत रुचि से न होकर सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से होता है। वही मानवीय जीवन का साहित्य कहलाता है।

साहित्य जीवन की व्याख्या है- साहित्य और मानवीय मूल्यों के संबंध को स्पष्ट करते हुए 'मैयू अर्नल्ड' ने साहित्य को, ''जीवन की व्याख्या कहा है।'' इस व्याख्या से उनका तात्पर्य मानवीय गुण-दोष कथन से नहीं है, अपितु मानव के सर्वांगीण विकास से है। वास्तव में मानव के शाश्वत मूल्य 'सत्यं शिवं सुंदरम्' तीनों की सामंजस्यपूर्ण प्रतिष्ठा ही सफलता की पराकाष्टा है। ''हितेन सः सहितं'' कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसमें स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है।

साहित्य में जितना संदेश होता है, जैसे श्तमसो मा ज्योतिर्गतम उसी प्रकार धर्म और साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है। यदि समाज न होता तो साहित्य भी नहीं होता। अतः साहित्य होगा तो समाज भी होगा। समष्टि ही साहित्य में अभिव्यंजित है। अतः मानव, साहित्य और समाज के बाहर जी ही नहीं सकता ।

उपसंहार

मानवीय मूल्यों का अंतिम उत्स मानव को पूर्ण शान्ति प्रदान करना ही है, क्योंकि भारतीय साहित्य जीवन संतुष्टि और मानसिक शान्ति को ही परमानन्द मानता आ रहा है। अतः कहना न होगा की साहित्य में वर्णित मानवीय मूल्यों के आचरण के माध्यम इसी परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करना ही हमारा गंतव्य रहा है। संप्रति अर्वाचीन जीवन में व्यक्ति समस्त संपदाओं और भोगों के होते हुये भी जिस शून्यता को महसूस कर रहा है, वह यदि उससे मुक्त होना चाह रहा है, तो उसके लिये इन मानवीय मूल्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाने के अतिरिक्त कोई अन्य

विकल्प नहीं है। वर्तमान युवा पीढ़ी भी जब तक विज्ञान के आकर्षक भ्रमजाल और तथाकथित पश्चिम की 'सभ्यता' से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाएगी, तब तक उसके लिये शान्ति मृगतृष्णा ही रहेगी।

साहित्य जिन मानवीय मूल्यों को ग्रहण कर उनके स्वरूप को अभिव्यक्त करता है, वे साहित्यिक-मूल्य कहलाते हैं। मानवीय मूल्यों एवं साहित्यिक मूल्य वस्तुतः एक ही हैं। 'मानवीय मूल्य' समाज की मान्यताओं और धारणाओं के अनुसार बनते-मिटते और बदलते रहते हैं। परन्तु शाश्वत मूल्य न कभी बदलते हैं और न मिटते हैं।

संदर्भ

1. डॉ. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
2. अजित नारायण त्रिपाठी, नैतिक और मानवीय मूल्य, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, 2017
3. डॉ. मार्तण्ड सिंह, आधुनिक कथा साहित्य में मानवीय मूल्य, एकेडमिक बुक इण्डिया, दिल्ली, 2019
4. डॉ. नयन कुमार आचार्य, वेदों में मानवीय मूल्य, वेदऋषि मुखर्जी ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2015
5. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, मिनर्वा पब्लिकेशन, तमिलनाडु, 2018
6. डॉ. जनार्दन वाघमारे, शिक्षा साहित्य और मानवीय मूल्य, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2020
7. https://www.hastakshep.com/what is the importance oflife-values in literature
8. https://www.tejasviastitva-com/manav-mulya-aur-sanskaar-sahitya
9. deshbandhu-co-in/vichar/साहित्य में मानवीय मूल्यों का महत्व
10. https://www-drishtiias-com/hindi/paper4/human-values

8. साहित्य एवं मानवीय मूल्य

नानासाहेब देशमुख
डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

साहित्य का हमारी संस्कृति एवं देश की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य चाहे कौन-सी भी भाषा में हो वह हमारी संस्कृति तथा समाज की गतिविधियों को समाज के सामने लाने का माध्यम है। हर साहित्यिक अपनी-अपनी भाषा में समाज की वर्तमान, भूतकालिन घटनाओं के जरिए भविष्य के लिए एक रास्ता दिखाने की कोशिश करता है। साहित्य में वह अव्यक्त भावों को व्यक्त करता है। जिससे जीवन के विविध रूप हमारे सम्मुख आते हैं। जिसमें मानवता का कल्याण और विश्व बन्धुत्व की कामना होती है। भारतीय साहित्य में एक ऐसी चेतना विद्यमान है जिसमें भारतीयता का रंग है, जीवन-मूल्यों को जीने का ढंग है, आध्यात्मिकता की उड़ान है तथा आत्मा की मुक्ति का विधान है। अनेक धर्मों तथा जीवन पद्धतियों और विचारधाराओं के होते हुए भी भारतीय संस्कृति अपनी एकात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। चाहे वैदिक संस्कृत हो या तमिल का संगम साहित्य इनमें संस्कार चेतना और समानता के साथ मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा दिखतीं है। साहित्य और मूल्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मानव, साहित्य और समाज के बाहर जी नहीं सकता। साहित्य जिन मानव मूल्यों को ग्रहण कर उनके स्वरूप को अभिव्यक करता है, वे साहित्यिक मूल्य कहलाते हैं। युग-परिवर्तन के साथ-साथ जीवन-मूल्य भी बदलते जाते हैं। आदिकाल के जीवनादर्श यथावत रूप में मध्यकाल में नहीं मिलेंगे और मध्यकालीन जीवन-मूल्यों को यथावत रूप में आधुनिक काल में नहीं पाया जा सकता लेकिन कुछ ऐसे भी मानव-मूल्य हैं जो हर युग में अपनी उपस्थिति बनाये रख सके हैं। ये ही शाश्वत जीवन-मूल्य हैं और इन्हें भारतीय साहित्य के हर कालखण्ड में अन्तर्निहित पाया गया है।

साहित्य शब्द 'काव्यशास्त्र में साहितस्य भावः इति साहित्यम्' इसके अनुसार

साहित्य में हित की भावना का होना अनिवार्य है। ''साहित्य = सहित+यत्, साहित्य का अर्थ शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव अर्थात साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है।''[1] यहाँ साहित्य से 'सहभाव' शब्द उद्धृत होता है। जितका अर्थ होता है सत् गुणों के साथ जो आता है वही साहित्य है। 'हितेन सह सहितं' कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसमें स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है। साहित्य का संबंध व्यक्तिगत रुचि से न होकर सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से होता है। वही जीवन का साहित्य कहलाता है। मूल्य शब्द का प्रयोग पर्याप्त विस्तृत एवं वैविध्यमयी है। यह वाणिज्य से लेकर कलाओं तक माननीय ज्ञान तथा वाङ्मय में पाया जाता है। अर्बन के मतानुसार, ''ऐसी कोई भी वस्तू मूल्य हो सकती है जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है।''[2] वास्तव में मूल्य जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मत सिद्धान्त होते हैं जिन्हें अपनाकर कोई जाती, धर्म या समाज सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाने का नियोजन करता है। प्रो. राधाकमल मुखर्जी मूल्य की व्याख्या करते हुए कहते है, ''मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत इच्छाओं एवं लक्ष्यों का नाम है।''[3] तथा वुड्स के मतानुसार, ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत है। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते है।''[4] इन व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि जीवन मूल्यों का मुख्य उद्देश्य मानवीय जीवन को संयमित तथा व्यवस्थित कर सुखद परिणीति करना है। भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यम् शिवम्' संदरम् युक्त मानवीय विचार एवं चिंतन का निचोड़ ही जीवन मूल्य कहलाता है।

व्यक्तित्व में धैर्य, नीति, बुध्दि, वाक्चतुरता आदी 'शाश्वत' मूल्य दर्शाये गये है। प्रत्यक्ष-अप्रत्क्ष रूप में बहुत से मानवीय मूल्य पुराणों और धार्मिक कथाओं से उपजे हैं जिनकी व्याप्ति लगभग सभी भारतीय साहित्य में है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में निहित मानवीय मूल्यों का प्रसार व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है। इन दोनों उपजीव्य काव्यों के कुछ विशेष प्रसंगों अथवा पात्रें का पुनराख्यान आज तक हो रहा है और आगे भी होता रहेगा, सिर्फ इसलिए कि इन महाकाव्यकालीन जीवन-मूल्य वर्तमान सन्दर्भ में भी सार्थक और प्रासंगिक हैं। वाल्मीकि रामायण तत्कालीन समाज का दस्तावेज बनकर हमारे सामने आता है जिसमें सद-असद दोनों प्रवृत्तियाँ देखी जाती है। जहाँ मानव-प्राचीन युग में मूल्यों का निर्धारण, राज्य, धर्म एवं समाज के द्वारा किया जाता था, जैसे कि हमें भगवान श्रीकृष्ण या आदर्शोन्मुखी राम का गुण वर्णन दिखाई देता है। इन रुपों द्वारा आदर्श महिमा का श्रेष्ठत्व प्रस्तुत होता है, वहीं राक्षसत्व की पराकाष्ठा दिखती है

लेकिन विचारों की द्वन्द्वात्मकता में आदर्शवादिता की जीत होती है। जीवन में आदर्शों और मूल्यों को अपनाने वाला विजयी होता है। आने वाली पीढ़ी के लिए भी यह एक आदर्श स्थापित करता है। इसलिए आजतक भारत की लगभग सभी भाषाओं में रामायण का अनुवाद और पुनर्रचना हुयी है। जैसे कि, हिन्दी में रामचरित मानस, कन्नड़ में पंप रामायण, तमिल में कंबरामायण, तेलुगू में रंगनाथ-रामायण, मराठी में मोरोपंत की रामकथा, मलयालम में एजुत्तच्चन की अध्यात्म रामायण, बंगला में तिवास-रामायण, असमिया में माधव कंदलि की रामायण, उड़िया में सारलादास की विलंका-रामायण तथा बलरामदास की रामायण आदि में उन्हीं जीवन-मूल्यों की स्थापना के व्यापक अंग हैं। रामायण की तरह महाभारत भी जिस चेतना के साथ अपने समकाल को प्रस्तुत करता है उसी आधार पर वह तत्कालीन समय तथा समाज का इतिहास भी है और सद्-असद् वृत्तियों का कथात्मक दस्तावेज भी। 'यन्न भारते तन्न भारते' द्वारा महाभारत की वह परम वास्तविकता प्रस्तुत होती है। अधर्म पर धर्म की विजय, जीवन-मूल्यों की स्थापना का प्रयास करना ही है।

बौद्ध तथा जैन साहित्य में मानव मूल्य के प्रबल भाव लक्षित होते हैं। बौद्ध धर्म पूजा, करुणा तथा समता की शिक्षा देता है, जो जैन साहित्य में भी देखने को मिलता है। "जैन साहित्य में अहिंसा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। त्याग और संयमपूर्ण जीवन निर्वाह प्रेम और करुणा, शील व सदाचार का आदर्श महावीर के प्रवचनों का सार था। जो विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत था। मानव मूल्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य समृद्ध और सम्पुष्ट है। आदिकालीन हिंदी साहित्य से लेकर समकालीन हिंदी साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति में एकता का स्वर मिलता है। साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन और समाज की कुरीतियों व बुराइयों से हटकर स्वस्थ, सुंदर और आनंदमय जीवन की ओर अग्रसर करना है। साहित्यकार व्यक्ति से अधिक समाज, समाज से अधिक राष्ट्र को महत्व देता है। अपनी लेखनी के माध्यम से मानव में दया, प्रेम, त्याग, सहभाव, उदारता तथा परोपकार जैसे मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए प्रेरित करता है।"[5] जिससे स्पष्ट होता है कि साहित्य का मूल उद्देश्य सत्यं, शिवं, सुंदरम् तीनों की सामंजस्यपूर्ण प्रतिष्ठा है। गोरखनाथ की 'गोरखवाणी' भारतीय जीवन-मूल्यों की संवाहिका है। कबीर भी आत्मानुभव पर जोर देते हैं। उनके साहित्य में दया, क्षमा, संतोष, परोपकार आदि मानवीय मूल्यों पर बल दिया है। कबीर की ही परम्परा के संत रैदास, नानक, धन्ना, सुंदरदास, दादू दयाल, मलूकदास आदि के साहित्य में भी समाज कल्याण की भावना दृष्टिगत होती हैं। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं

कि, "इन संतों की सबसे बड़ी देन यह रही कि उन्होंने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न वर्ग के लोगों में आत्मविश्वास पैदा किया और उनमें एक प्रकार के आत्म गौरव का भाव जगाया।"[6]

हिंदी की आरंभिक कुछ कहानियाँ आदर्शपरक या कल्पनापरक होती थी पर धीरे-धीरे इसमें जीवन मूल्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती गई। जैसे कि स्वतंत्रता पूर्व कहानी में त्याग, निस्वार्थता, बलिदान आदि भावनायें विकसित की गई थी तो स्वातंत्र्योत्तर काल में भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, लोभस प्रवृत्ती तथा बनते बिगडते रिश्ते दिखाई देते है। प्रेमचंद कालीन कहानी में यथार्थ को दर्शाने का प्रयास किया गया। यथार्थता के माध्यम से जीवन की विसंगतियाँ, कुरुपता को दर्शाने की कोशिश की गयी है। प्रेमचंद जी हमेशा से ही मूल्यों के आग्रही दिखाई देते है। उनकी 'परीक्षा', 'नमक का दरोगा', 'पाँच परमेश्वर', में आदर्श का ही चित्रण मिलता है। विश्वंभरनाथ शर्मा की 'ताई' कहानी में पारिवारिक मूल्यों को दिखाते है तथा कमलेश्वर जी के 'मांस का दरिया', 'कस्बे का आदमी', 'बयान' आदी कहानियों में आदर्श का आग्रह दिखाई देता है तो दूसरी ओर मोहन राकेश की 'मलबे का आदमी' में परिस्थितिनुरुप गिरते मूल्य और मंन्नू भंडारी की कहानियों में पारिवारिक टूटते मूल्य, पुराने और नये मूल्यों में हो रहा संघर्ष दिखाई देता है। नयी कहानी और मूल्यों के संदर्भ में डॉ. इंद्रनाथ मदान का मन्तव्य सही लगता है, "पहले कहानी अधिकांशतः कल्पना पर आधारित होती थी अब यथार्थ को लेकर चलती है। अतः पहले की कहानी पुरानी है और आज की कहानी नयी है। नयी कहानी में तलाश पात्रों की नहीं यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर।"[7]

अज्ञेय की साहित्य में जीवन मूल्य पग-पग में विद्यमान दिखते हैं। वे दानव को मानव और मानव को महामानव बनाना चाहते हैं। मूल्यों को यथावत बनाए रखने के लिए वह हर मुमकिन कोशिश करते हैं। 'कैसॉड्रा का अभिशाप' नामक कहानी में मानवता का पक्ष लेते हुए लिखते हैं,..."यहाँ वे लड़के भी हैं, जो अपने माता-पिता का पेट भरने माता-पिता के पेट का खालीपन कम करने को भी तैयार हैं, जिसके विरुद्ध समस्त मानवता चिल्लाती है।"[8]

प्रसाद ने अपने साहित्य के माध्यम से ही मनुष्यत्व को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया है। उनके विचार से लोग उदात्त जीवन मूल्यों के अभाव से दया सहानुभूति और प्रेम के उद्गम से परिचित नहीं हो पायेंगे। 'तितली' में उन्होंने मानव के विकास और उसकी इच्छाओं को प्रस्तुत किया है, तो 'कंकाल' में समाज

के विकृत प्रेम को चित्रित करके उसे मानवता की भूमि पर प्रतिष्ठित किया। 'इरावती' में मौर्यकालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के से क्षुब्ध लोक हृदय का चित्रण मिलता है। प्रसाद के साहित्यिक मूल्य के विषय में प्रो. वासुदेव का कथन समर्पक लगता है। "प्रसाद की कहानियों का प्रधान लक्ष्य आदर्शवादी प्रतिष्ठा है, जो समाज और व्यक्ति दोनों क्षेत्रों में वे जीत हुई है। उन्होंने यथार्थ और आदर्श का समन्वय किया है।"[9]

साठोत्तरीय काल में तो महिला लेखन द्वारा विभिन्न मूल्यों को दर्शाया है। इस काल में परिवार टूटते नजर आये है। देश की अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, महँगाई अधिकतर नजर आती है। कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यासों में सेक्स का अधिकतर चित्रण, पुरातण मूल्यों को नकारती औरतें दिखाई देती है तो मुन्नू भंडारी के 'आपका बंटी', 'एक इंच मुस्कान', 'महाभोज', 'स्वामी' आदी उपन्यासों मे प्रेम, राजनैतिक परिवेश, अलगाव, विश्वास आदी मूल्यों को व्यक्त करते हैं। जैसे कि हम कह सकते हैं कि मूल्यों का प्रारंभ परिवार से होता है। परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य ग्राम, प्रांत, देश जैसे व्यापक समाज में आता है। मूल्यों द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करता है।

आधुनिक साहित्य में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है। सुनीता जैन की एक कविता है 'बदल सको तो बदलो' उसमें उन्होंने जीवन के आदर्श और यथार्थ मूल्यों को दर्शाया है। कुछ पंक्तियॉ इस प्रकार हैं :

"हम दोनों
एक दूसरे को
घायल करते रह सकते थे
नाखनों से
चकू पैंन से ...
जल से अधिक
आंसू में तैरानी है।"[10]

सुनीता जैन की तरह ही जगदीश गुप्त जीवन-मूल्यों को मानवीय मूल्य और मानवीय मूल्यों को भारतीय मूल्य के रूप में देखते हैं, "मैं समझता हूँ कि तत्वतः सभी भारतीय मूल्य मानवीय मूल्य हैं, चाहे वे नैतिक मूल्य हों, चाहे सौन्दर्यपरक मूल्य हों या कोई और, पर विशेष अर्थ में मानव मूल्यों से है, जो मनुष्य के साथ सहज रूप में जुड़े हुए हैं। अतः जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ मानवीय

मूल्यों की प्रतिष्ठा है उसके बिना मानव का अस्तित्व निरर्थक है।"[11] इससे सहज स्पष्ट होता है कि साहित्य पाठकों को जीवन के यथार्थ से जोड़ता है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्य और जीवन मूल्यों का शाश्वत संबंध है। साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार आज भी मानव-मूल्य ही है। यदि समाज न होता तो साहित्य भी नहीं होता यदि साहित्य होगा तो समाज भी होगा। साहित्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। समाज में मूल्यों की जो स्थितियाँ हैं वही हम साहित्य में देखते हैं। हर साहित्यकार ने उन मूल्यों को विभिन्न माध्यमों से उद्धृत किया है, किसी ने कहानी के माध्यम से तो किसी ने कविता या उपन्यास के माध्यम से। भारत बहुजातीय, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश है इसलिए भारतीय साहित्य भी विविधवर्णी है। साहित्य में जीवन-मूल्य कल्पनाजन्य नहीं होते, बल्कि साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते हैं, जो उसकी आत्मोपल की प्रक्रिया में स्थापित होकर अपनी सुंदरता, महत्ता और उदारता के कारण समाज द्वारा जीवन-मूल्यों के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। 'मूल्य' शब्द का प्रयोग आदर्श, आवश्यकता, प्रेरणा, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में होता है। वर्तमान में मनुष्य पुराने विचारों को काल बाह्य समझने लगा है, प्राचीन मूल्य अस्वीकृति हो रहे हैं और नए-नए मूल्य स्वीकार किए जा रहे हैं।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश-सं. धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 19
2. उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण, अविनाश महाजन, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, पृ. 34
3. द फ्रंटियर्स ऑफ सोशल-साइंस-प्रो. राधाकमल मुखर्जी, पृ. 23
4. उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन मूल्यों का यथार्थ चित्रण, अविनाष महाजन, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, पृ. 34
5. संत कबीर का साहित्य-डॉ. बिंदु दुबे, कला प्रकाशन, पृ. 41
6. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, डॉ. नरेंद्र, प्रभात प्रकाशन, पृ. 186
7. हिंदी कहानी अपनी जुबानी, वाणी प्रकाशन, डॉ. इंद्रनाथ मदान, पृ. 31
8. कैसॉड्रा का अभिशाप, संपूर्ण कहानियां सेव और देव-अज्ञेय, पृ. 383
9. हिंदी कहानी और कहानीकार-प्रो. वासुदेव एम. ए., वाणी-विहार प्रकाशन, बनारस, पृ. 51
10. युग क्या होते और नहीं?-सुनीता जैन, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 39
11. नयी कविता, स्वरूप और समस्यायें-जगदीश गुप्त, प्रभात प्रकाशन, पृ. 15

9. हिन्दी काव्य साहित्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य

डॉ. सुनील गुलाबसिंग जाधव
हिन्दी विभाग, यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़

'साहित्य' शब्द को लेकर जब हम चर्चा करते हैं। तो हम बहुत पीछे चले जाते हैं। जिस समय मनुष्य ने अपनी भावनाओं और विचारों को लिपिबद्ध किया और उसे समाज के सम्मुख रखा, अपनी भावना और विचारों को अभिव्यक्त करने वाला एवं समाज के वास्तविक चेहरे को समाज को दिखाकर उसमें सुधार करने का काम साहित्य ने हमेशा से किया हैं। यह साहित्य विभिन्न विधाओं के रूप में अपने विचारों, भावों, समस्याओं, मूल्यों आदि की अभिव्यक्ति निरंतर करता आया हैं। विश्व में लिखा गया साहित्य, विभिन्न भाषाओं में लिखा गया साहित्य हैं। भारत में असमिया, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगू, उर्दू आदि 22 आधिकारिक भाषा हैं। जिसमें साहित्य लिखा जाता है और पढ़ा जाता है। साहित्य क्रांतिकारी भूमिका निभाने का काम सदैव करता आया है। हिंदी साहित्य भी इसी प्रकार का एक साहित्य है, जो विभिन्न विधाओं के माध्यम से विचारों, भावों, समस्याओं, मूल्यों की अभिव्यक्ति निरंतर नदियों की धारा प्रवाह के समान करता आया हैं और निरंतर करता रहेगा। जब हम साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि हमारा साहित्य मूल्य पर आधारित है।

जब हम 'मूल्य' शब्द का उल्लेख कर रहे हैं, तो हमें मूल्यों को लेकर तनिक चर्चा कर लेनी होगी। 'मूल्य' कहते ही हमारे समाज में सहज रूप में व्यावहारिक रूप से उपयोग में लाए जाने वाला 'चालान' या 'मुद्रा' को हम 'मूल्य' कह सकते हैं। जिसे हम 'रुपए' के रूप में भी संबोधित करते हैं। समाज या प्रशासन एक विशेष धातु या कागज को मूल्य बनता है और उसे मूल्य के रूप में हम आर्थिक एवं विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं, जिसे हमने निर्धारित किया है। सब कुछ इस मूल्य पर आधारित होता है। उसी प्रकार से समाज के भी अपने कुछ मूल्य

होते हैं। उसी मूल्य के आधार पर समाज में मनुष्य को सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस रूप में यदि मूल्य का हम अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि मूल्य अर्थात 'जो कुछ अच्छा है' की भावना है। वह सब मूल्य है अर्थात समाज के हितकारक या मनुष्य के हितकारक जो हैं, वह सब कुछ मूल्य होते हैं। यह मूल्य जन्म लेते हैं और समाज के द्वारा मान्यता प्राप्त होने के पश्चात ही वह मूल्य के रूप में चलन में आते हैं। समाज उसी मूल्य को अपनाकर आगे बढ़ता है। उसी से समाज की प्रगति होती है और समाज की प्रगति में ही राष्ट्र की प्रगति निहित होती है। ऐसे मूल्य जिनको समाज मान्यता प्रदान करता है, उसी मूल्य पर हम सदैव चलने का कार्य करते हैं अर्थात समाज हमें उन मूल्यों के नियमों में बांध देता है या यूं कहें कि मनुष्य स्व के बंधन बना लेता है और मनुष्य के हितकारक समाज मान्य मूल्य स्वीकृत कर लेता है और उसी पर वह चलता हैं। जैसे सत्य, शिवम, सुंदरम, वसुदेव कुटुंबकम, सत्यमेव जयते, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, समता, एकता, बन्धुता, परोपकार, करुणा, मैत्री, उत्साह आदि।

सभी मूल्य सदा अमर होते हैं। ऐसा हम कह भी नहीं सकते हैं। क्योंकि प्राचीन काल में जो मूल्य उसे समय योग्य और समाज के हित कारक थे, वह एक युग के बाद कालबाह्य सिद्ध हो जाते हैं। मूल्य समय सापेक्ष होता है। समय के अनुकूल ही हम मूल्य निर्धारित करते हैं कि यह समाज योग्य है या नहीं है। समाज के अच्छाई के लिए है या नहीं है। हमें समय सापेक्ष मूल्यों को स्वीकार करते रहना चाहिए और कल बाह्य मूल्यों को बाहर निकाल फेंकना चाहिए। सुमित्रानंदन पंत ऐसी एक बात अपनी कविता के माध्यम से कहते हैं :

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!
हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन!!" [1]

अर्थात पेड़ पर लगने वाला जो पत्ता पीला पड़ जाता है अर्थात कि वह कालबाह्य हो जाता है, उसका जीवन समाप्त हो जाता है और वह गल कर जमीन पर पड़ जाता है। वहां पर दूसरा नया पत्ता उग आता है अर्थात जो पत्ता जीर्ण-शीर्ण हो गया, वह उसे पेड़ पर रहने योग्य नहीं रहता है। वहां पर नए पत्ते की जरूरत होती है। इसी प्रकार समाज में नए मूल्य को स्वीकृत करते रहना चाहिए अर्थात समय सापेक्ष मूल्यों को स्वीकृत करते रहना चाहिए। हम यह बात नहीं करते हैं कि सभी मूल्य योग्य नहीं होते हैं और सभी मूल्य योग्य होते हैं। कालिदास ने भी यही बात कही थी सभी पुरानी बातें अच्छी होती हैं ऐसा नहीं है

और सभी नई बातें स्वीकृत करना चाहिए ऐसी बात नहीं है अर्थात की जो समाज के योग्य हो, हितकारक हो या मनुष्य के अच्छाई के लिए हो जिसे समाज मान्यता प्रदान करता है। उन्हीं मूल्यों हमें स्वीकृत कर लेना चाहिए और यही मूल्य मनुष्य को समाज में पद, सम्मान, प्रतिष्ठा दिलाने का कार्य करते हैं या यूं कहे कि चरित्र निर्माण में मूल्यों की बहुत बड़ी भूमिका होती हैं। राम, कृष्ण, अंगुलीमाल, वाल्मीकि, महात्मा गौतम बुद्ध, महावीर वर्धमान, स्वामी विवेकानंद, फुले, शाहू, अंबेडकर, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, अटल बिहारी वाजपेयी, नरेंद्र मोदी आदि अपने-अपने क्षेत्र में मूल्यों पर चल कर अपना आदर्श समाज के सम्मुख रखते हैं।

मूल्य को मनुष्य जब अंगीकृत कर लेता है तब यह मूल्य समाज में प्रचलित हो जाते हैं, रूढ़ हो जाते है, पूरी तरह से मान्य हो जाते हैं। यही मान्य मूल्य साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होते रहते हैं और यही मूल्य आगे चलकर हमारी संस्कृति बन जाती है और संस्कृति हमारी धरोहर और हमारी पहचान होती है। किसी भी समाज, किसी भी जाति, किसी भी धर्म या किसी भी देश की अपनी संस्कृति होती है और वही उसका परिचय होता हैं या यूं कहे कि हमारी आत्मा संस्कृति होती है और संस्कृति का मूल मानवीय मूल्य होते हैं और इन्हीं मूल्यों के आधार पर संस्कृति का जन्म होता है। यही मूल्य और संस्कृति मनुष्य को महान बनाने का कार्य करती है। इसी को साहित्य हमेशा से अपने साहित्य के विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता आया है और करता रहेगा।

हिंदी साहित्य में जब हम मध्य युगीन साहित्य का अध्ययन करते हैं तो उसमें हम भक्ति काल और रीतिकाल का अध्ययन विशेष रूप से करते हैं। यह युग विदेशी आक्रमण कार्यों द्वारा भारत में अपनी सत्ता स्थापन करने और हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के टकरा का समय था। मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया और भारतीय राजा-महाराजाओं को पराजित किया। धीरे-धीरे भारत मुगलों के आधिपत्य में जाता रहा। एक और भारत मुगलों के आधिपत्य में जा रहा था। जहां पर समाज के सामने कोई आदर्श नहीं था। उस समय भारतीय जनमानस का आत्मविश्वास खो चुका था। वह निराशा एवं अंधकार में भटक रहे थे। भारतीय जनमानस को लग रहा था कि ऐसे समय में हमें बचाने वाला कोई नहीं है। इस वक्त तुलसीदास, सूरदास, कबीर, जायसी आदि महान संत-भक्त, कवियों ने जनमानस में भक्ति का संचार कर, उन में आत्मविश्वास बढ़ाने का काम किया। आत्मविश्वास भी एक मानवीय मूल्य है। जिसे हमेशा से साहित्य बढ़ाने का काम करता आया है। तुलसीदास रामचरितमानस में स्पष्ट उल्लेख करते हुए समाज का आत्मविश्वास हैं।

''जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥

करहिं अनीति जाइनहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारिथा पहिंसुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥'' [2]

इस प्रकार से तुलसीदास हो, सूरदास हो या उस समय हिंदूओं में विभाजित संप्रदाय 'शैव, शाक्त, वैष्णव' हो या ब्राह्मण, क्षेत्रीय, वैश्य, शूद्र जातियों में हिंदू धर्म का विभाजन हो। इन सब में एकता की स्थापना करने का काम इस कल के कवियों ने किया था। जिसमें कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूरदास, रहीम, रसखान जैसे कवियों के नाम यहां लिए जा सकते हैं। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश अपनी कविता के माध्यम से देने का काम किया। वे एक ओर हिंदुओं में स्थित रीति, परंपराओं, पाखंड, आडंबर का भी विरोध करते हैं; तो वहीं पर मुस्लिम धर्म में भी स्थित रूढ़ि परंपरा या पाखंड का विरोध करते हुए नजर आते हैं। वे कहते हैं :

''पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताकि यह भली चाकी, जो पीसी खाए संसार ॥ [3]

वहीं मुल्ला मस्जिद पर खड़े होकर आजान देते हैं। इस पर उनका कहना था कि वह अल्लाह चींटी के पैरों के चलने की आवाज सुन सकता है तो जोर से आवाज निकालने की क्या आवश्यकता है। वह कहते हैं कि :

''कांकर, पाथर जोड़ी के मस्जिद लई बनाएं।
ता खड़ी मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ॥'' [4]

इस प्रकार से एकता के मानवीय मूल्य की स्थापना इन कवियों ने अपने कविताओं के माध्यम से करने का काम किया।

रीतिकाल में श्रृंगार की प्रमुखता रही है। श्रृंगार की प्रमुखता के साथ हम भक्ति भी फुटकल रूप में देखते हैं। साथ में एक और साहित्य का प्रकार था। जिसे हम वीर रस की कविता कह सकते हैं। जिसमें कवि भूषण का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। कवि भूषण, कवि लाल, कवि गंग जैसे कवियों ने तत्कालीन समय में वीर रस की कविताओं को लिखकर भारतीय सैना में मर मिटने की भावना को जगाने एवं वीर रस का संचार करने तथा आत्मविश्वास बढ़ाने का काम किया। यह वीर रस की कविताएं किसी मूल्य से कम नहीं थे। क्योंकि आक्रमण कार्यों के विरोध में भारतीय जनमानस में इस प्रकार आत्मविश्वास जगाना यह कोई सामान्य बात नहीं थी।

आधुनिक काल में हम देखते है कि अंग्रेज भारत में व्यापार करने की प्रवृत्ति

वे आते हैं और ईस्ट इंडिया की स्थापना करते हैं। वे देखते हैं कि भारत भीतर से जाति-धर्मों में बँटा हुआ है। उन्होंने फूट डालो और राजनीति करो के सिद्धांत को अपनाया। वे साम्राज्यवादी बन जाते हैं। पूरे भारत को अपने कब्जे में ले लेते हैं। इस समय देशभक्ति-मानवीय मूल्य का बीजारोपन हुआ। यह देश भक्ति भारत के जन-जन में छोटे बच्चों से लेकर जवान, बूढ़े, स्त्रियों में देशप्रेम, देशभक्ति, त्याग, बलिदान की भावना जैसे मानवीय मूल्यों पर लोग चल रहे थे। इस समय देश के लिए मरमिटने की भावना प्रबल होते जा रही थी। ऐसे में हिंदी साहित्य ने सशक्त भूमिका निभाने का काम किया। चाहे वह प्रेमचंद हों, जिन्होंने 'सोजे वतन' नामक कहानी संग्रह के माध्यम से देश को जगाने का काम किया। तो वहीं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक के माध्यम से भारतीय जनता में अंग्रेजों के खिलाफ क्रांति की भावना जागृत करने का काम किया। वे एक ओर भारत में स्थित अविद्या, अलसी और अंग्रेजों से भयभीत जनता को देखते हैं और वहीं पर वे अंग्रेजों से शोषित भारत की दरिद्र अवस्था को दिखाकर भारतीय जनता को जगाने का काम किया। उन्होंने अंग्रेजों की वास्तविक नीति का भंडाफोड़ किया।

''भीतर-भीतर सब रस चूसो, हंसी-हंसी के तन-मन-धन चूसो।
जाहिर बातन में आती तेज, क्यों सखि सज्जन नहीं अंग्रेज ॥'' [5]

इस प्रकार से उन्होंने अंग्रेजों के विरोध में आवाज उठाई। इस आंदोलन प्रेमचंद, भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से देश प्रेम की भावनाओं को जगाने का काम किया, ''झाँसी की रानी-सुभद्राकुमारी चौहान, पथ भूल न जाना पथिक कहीं! शिवमंगल सिंह सुमन, हिमालय-रामधारी सिंह दिनकर, देश-प्रेम : मेरे लिए-धूमिल, वीरों का कैसा हो वसंत? सुभद्राकुमारी चौहान, शहीदों की चिंताओं पर जगदंबा-प्रसाद मिश्र 'हितैषी', उठ जाग मुसाफिर-वंशीधर शुक्ल, जेल में आती तुम्हारी याद-शिवमंगल सिंह सुमन आदि।''[6]

इस समय महिलाओं के विषम समय के रूप में हम देख सकते हैं। महिलाओं को चार दिवारी के बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी। बच्चे संभालों और चार दिवारी के भीतर चूल्हा संभालने तक उनका जीवन सिमटा हुआ था। जिन्हें सोने के जंजीरों से बांध के रखा गया था। स्त्री शोषण का शिकार थी। उन्हें पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं था। पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। बहुत सारे अधिकारों से महिलाओं को वंचित रखा गया था। ऐसे समय में महिलाओं के लिए साहित्य के माध्यम से जागृति लाने का काम, उन्हें सम्मान का स्थान दिलाने का

काम साहित्य ने किया था। ऐसे समय में भारतेंदु ने अपने मुरकियों के माध्यम से विधवाओं को संदेश देते हैं कि यदि तुम्हें अपनी स्थिति को सुधारना है तो तुम्हें पढ़ना लिखना नितांत आवश्यक है। तुम पढ़ोगे-लिखोगे तभी तुम अपनी स्थिति को सुधार पाओगे।

ऐसे ही अंग्रेजों के विरोध में देशप्रेम और देशभक्ति का जब आंदोलन चल रहा था, इस आंदोलन में महिलाओं की भूमिका कम थी। उसे समय जयशंकर प्रसाद जैसे रचनाकारों ने महिलाओं की भूमिका को अपने साहित्य के माध्यम से बढ़ाने का काम किया। उन्होंने अपने साहित्य में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने 'चंद्रगुप्त' नाटक में अलका, कार्नोलियाजैसे महिला पात्रों को देशप्रेम, देशभक्ति से ओतप्रोत बताया हैं। कार्नोलिया जो विदेशी महिला है, भारत में आती है और भारत के सौंदर्य को देखकर वह कहती है :

''अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥
सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा ॥'' [7]

वहीं पर अलका जैसा पत्र अपने सैनिकों में आत्मविश्वास बढ़ाने का काम करती है। वह अपने कविता के माध्यम अपने सैनिकों को सम्बोधित करती हैं :

''हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
''अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो!''
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के-रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाडवाग्नि से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो-बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥'' [8]

इस गीत ने तत्कालीन समय में जागरण गीत के रूप कार्य किया था। तत्कालीन समय में महिलाएं सुबह-सुबह प्रभात फेरी निकला करती थी। तत्कालीन समय में क्रांतिकारी भूमिका निभाई और महिलाओं को भी इस स्वतंत्रता आंदोलन में समान रूप में सहभागी दिलाने का काम किया। प्रसाद के साथ महिलाओं की स्थिति को सुधारने का काम तत्कालीन समय में या उन्हें महत्वपूर्ण स्थान देने का काम विभिन्न कवियों ने भी किया था। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त का नाम हम ले सकते हैं। 'साकेत' जैसा महाकाव्य हो, 'यशोधरा' नामक काव्य हो, उनमें अपेक्षित

महिलाओं को स्थान देने का काम किया है। साकेत जैसे काव्य में उन्होंने उर्मिला को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उर्मिला जिसे रामायण में उपेक्षित पात्र के रूप में देखा जाता है। उसे सम्मान का स्थान अपनी रचना में देने का काम किया। 'यशोधरा' नामक महाकाव्य में यशोधरा जो सिद्धार्थ अर्थात गौतम बुद्ध की पत्नी है। गौतम बुद्ध एक दिन यशोधरा को छोड़कर चले जाते हैं। लेकिन उसके बाद यशोधरा की मानसिक स्थिति का चित्रण, उसकी भावनाओं का चित्रण करता हुआ नजर आता है। यशोधरा पर क्या बीती होगी उसकी मानसिक स्थिति क्या हुई होगी, इसे वे अपने महाकाव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

''सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात;
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते;
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते ॥'' [9]

महिलाओं को सम्मान का स्थान साहित्य में सदैव दिया है। वहीं पर महिलाओं पर होने वाले अन्याय और अत्याचार को लेकर महिलाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से कलम भी उठाना आरंभ कर दिया था। जिसमें, ''1) 1904-1948 सुभद्राकुमारी चौहान (2) 1907-1987 महादेवी वर्मा (3) 1923-2003 शिवानी (4) 1925-2019 कृष्णा सोबती (5) 1930 उषा प्रियंवदा (6) 1931- 2021 मन्नू भंडारी (7) 1934 कृष्णा अग्निहोत्री (8) 1934 मालती जोशी (9) 1936-1998 मंजुल भगत (10) 1938 मृदुला गर्ग (11) 1938 सुमन राजे (12) 1938 चंद्रकांता (13) 1940 ममता कालिया (14) 1042-2008 प्रभा खेतान (15) 1944 मैत्रेयी पुष्पा (16) 1944 चित्र मुद्गल (17) 1944 नमिता सिंह (18) 1944 सूर्यबाला (19) 1944 मेहरुन्निसा परवेज (20) 1945 उषा किरण खान (21) 1946 मृणाल पाण्डे (22) 1948 नासिरा शर्मा (23) 1948 सुधा अरोड़ा (24) 1949 ऋता शुक्ला (25) 1955 क्षमा शर्मा (26) 1956 सारा राय (27) 1957 मधु कांकरिया (28) 1957 गीतांजलिश्री (29) 1959 उर्मिला शिरीष (30) 1959 जयाजादवानी (31) 1960 अलका सरावगी (32) 1961 अनामिका (33) 1960, डॉ. निशानंदिनी।''[10]

जैसे विभिन्न साहित्यकारों ने महिलाओं की समस्याओं व्यक्त करते हुए।

समाज में महिलाओं को सम्मान का स्थान पाने का अधिकारी ने बनाने का काम किया था। आगे चलकर हम देखते हैं, आधुनिक कवियों में चाहे वह निर्मला पुतुल हो या सुशीला टाकभोरे जैसी कवयित्री हो, इन कवियों ने सीधे-सीधे पुरुष वर्ग पर प्रहार किया है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में चुनौती देते हुए कहती हैं :

''क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत?
घर, प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम?'' [11]

कहते हुए पुरुष सत्ता को चुनौती दे देती है और स्त्री को सम्मान के अधिकारी बनने का अधिकार वह दिलाने का काम करती है। जिस समाज में महिला अपेक्षित है। उसे समाज में यदि सम्मान का स्थान मिल जाता है, तो यह मानवीय मूल्य ही है।

इस समय साहित्य में हम देखते हैं कि एक ऐसा वर्ग है, जिसे हम दलित वर्ग के रूप में संबोधित कर सकते हैं। दलित जो दबा हुआ, कुचला हुआ, जिसका शोषण हमेशा होता आया और होता रहता है। दलितों का शोषण हजारों सालों से होता रहा है, लेकिन साहित्य के माध्यम से अभी हम कुछ ही दशकों से लिखना आरंभ कर दिया है और साहित्य के माध्यम से दलितों ने स्वयं भोगी हुई पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। उन पर होने वाले अन्याय-अत्याचार, शोषण को उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। जिसमें बिहारी लाल हरित, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह 'बेचैन', सुशीला टाकभोरे, कौशल्या बैसंत्री जैसे रचनाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से भोगी पीड़ा को व्यक्त किया है। असंगघोष व्यक्त करते हुए कहते हैं :

''खामोश नहीं हूँ मैं,
हम गवाही देंगे
मैं दूँगा माकूल जवाब,
समय को इतिहास लिखने दो
हम ही हटाएंगे कोहरा
ईश्वर की मौत
अब मैं साँस ले रहा हूँ

बंजर धरती के बीज
तुम देखना काल (कविता संचयन) ॥'' [12]

दलितों को पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं था। समाज में उन्हें अस्पृश्य के रूप में समझा जाता है। उनकी छाया तक पढ़ने नहीं दी जाती थी। गांव के बाहर कहीं अलग से उनकी बस्ती में उन्हें रहना उनकी विवशता थी। ना उन्हें अच्छा खान-पान अधिकारी है ना वह अच्छे वेशभूषा के अधिकारी है। उन्हें हमेशा दरिद्र रखा गया। उनका शोषण हमेशा से किया गया। मरे हुए जानवर की खाल खींचना या मरे हुए जानवर का मांस खाना या उनकी विवशता थी। इस प्रकार का दलितों पर होने वाला अन्याय और अत्याचार हम दलित साहित्य में देखते हैं। हम देखते हैं कि दलितों के प्रति होने वाले अन्याय और अत्याचार को दलित साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से भोगे हुए पीड़ा को व्यक्त कर दलितों के प्रति सहानुभूति, मानवीय संवेदना समाज में जागने का काम किया और दलित भी मनुष्य है, उनका जीवन जानवर से बत्तर नहीं है। उन्हें भी मनुष्य बने रहने का अधिकार है। मनुष्यता का अधिकार पाना मानवीय मूल्य हैं।

21वीं सदी का साहित्य जब हम अध्ययन करते है, तो यह साहित्य विमर्शों के दौर से गुजरता हुआ नजर आता है। कभी वह दलित साहित्य के रूप में नजर आता है, तो कभी वह स्त्री विमर्श के रूप में नजर आता है। कभी आदिवासी विमर्श, कभी अल्पसंख्यक तो कभी, घुमंतू विमर्श तो, कभी दिव्यांग विमर्श के रूप में नजर आता है। यूं कहे कि यह साहित्य सूक्ष्म रूप में इसका अध्ययन होता गया और यह व्यापक धरातल में हमारे समूह आता गया और जो समाज मुख्य धारा प्रवाह से कटा हुआ था। उसके प्रति सहानुभूति जगाने, सम्मान का स्थान देने का काम इस साहित्य ने किया।

इसी साहित्य में किन्नर जीवन की भयानक वास्तविकता की अभिव्यक्ति देख सकते हैं। ना वह स्त्री है ना वह पुरुष बनाकर जीवन जीने के अधिकारी है। उन्हें किन्नर बनकर जीवन जीना पड़ता है। ताली बजाकर पैसे मांगना उनकी मजबूरी है। ना वह विवाह कर सकते हैं ना बच्चों को जन्म दे सकते हैं। उन्हें समाज में पूरी तरह से मान्यता प्राप्त नहीं है। ना वे समाज में सम्मान के अधिकारी बन पाए। ऐसे समय में किन्नरों को सम्मान का अधिकार दिलाने का काम किन्नर विमर्श की भीतर किया गया। किन्नर विमर्श को लेकर बहुत सारा साहित्य लिखा गया। वास्तविकता उनके दुख, उनकी पीड़ा, उनकी समस्याओं को पूरी सहानुभूति के साथ अभिव्यक्त करने का कार्य किया और उसे समझ में एक महत्वपूर्ण या मुख्य स्थान या धाराप्रवाह में लाने का काम इन साहित्यकारों ने किया। साहित्यकारों

ने समाज को जागृत करने का काम किया और किन्नरों के प्रति जो देखने का दृष्टिकोण समाज का था, उस दृष्टिकोण को बदलने का काम साहित्यकार करते नजर आते हैं। वह पुलिस बनती नजर आती है, कभी अध्यापक, कभी शिक्षक, कभी डॉक्टर, कभी इंजीनियर, तो कभी बिजनेसमैन के रूप में अब वह नजर आ रही है। वह भी अब सम्मान की अधिकारी बन गई है। यह मानवीय मूल्य हम साहित्य के माध्यम से उत्पन्न होते हुए देखते हैं। इस प्रकार से विभिन्न विमर्श हम साहित्य में देखते हैं और इन विमर्शों के माध्यम से उपेक्षित समाज को सम्मान का स्थान देने का काम, धारा प्रवाह में लाने का काम साहित्यकारों ने किया था अर्थात कि मनुष्य को मनुष्य का अधिकार दिलाने का काम, मानवीय मूल्य की स्थापना करने का काम साहित्यकारों ने किया था।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि, मनुष्य के हितकारक सभी समाज मान्य तत्व मानवीय मूल्य कहलाते हैं। जिसमें मानव कल्याण की प्रमुख भावना रहती है। हमारे समाज में जब भी मनुष्य इन मूल्यों से वंचित हुआ। तब-तब साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से मानवीय मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास किया हैं।

संदर्भ

1. http://kavitakosh-org/kk/द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र / सुमित्रानंदन पंत
2. https:// drishtikona-com/ 2018/07/ 01/जब-जब-होहीं-धरम-के-हानि
3. https://leverageedu-com/blog/hi/kabir-ke-dohe-in-hindi/
4. https://aanjanahistory-blogspot-com/2022/04/Masjid-Leo-was-built- by-joining-the-Kankar-Pathar-joint-Kankar-Pathar-Jori-K-html
5. http://kavitakosh-org/kk भीतर भीतर सब रस चूसै/भारतेंदु हरिश्चंद्र
6. https://www-hindwi-org/tags/patriotism/Kavita
7. http://kavitakosh-org/kk/ अरुण यह मधुमय देश हमारा / जयशंकरप्रसाद
8. http://kavitakosh-org/kk हिमाद्रि तुंग शृंग से / जयशंकर प्रसाद
9. https://www-aajtak-in/iterature/poems/story/yashodhara-poem-by-maithili-sharan-gupt-952377-2019-08-03
10. https://hi-wikipedia-org/wiki/हिंदी लेखिकाओं की सूची
11. https://www-hindwi-org/kavita/kya-tum-jante-ho-nirmala-putul-kavita
12. https:// hi-wikibooks-org/wiki/ हिंदी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)/दलित विमर्श

10. असमिया लोकगीतों में चित्रित लोक-संस्कृति

डॉ. नंदिता दत्त
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
नॉर्थ लखीमपुर कॉलेज (स्वायत्तशासी), असम

लोक साहित्य 'लोक' और 'साहित्य' इन दोनों शब्दों से बना हुआ है। किसी भी समाज के लोक जोवन में प्रचलित साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है। लोक साहित्य किसी व्यक्ति विशेष का धरोहर ना होकर एक समग्र जाति का धरोहर होता हैं। अतः इसमें किसी एक व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होता है। इसका जन्म एवं विकास का स्थान संबंधित समुदाय होता है, जहां उस समुदाय की संस्कृत-सभ्यता आदि का मूल रूप छिपा हुआ होता है, उनका खान-पान, जीवन-यापन की शैलियां उस में प्रतिफलित होती है। किसी भी साहित्य को निखारने में सबसे ज्यादा भूमिका लोक साहित्य की रहती है। असमिया लोकसाहित्य प्राचीन एवं समृद्ध हैं। यह असमिया लोगों के मानवीय मूल्यों, सभ्यता-संस्कृति, रीति रिवाजों को प्रतिफलित करता हैं। भौगिलिकीकरण के चलते आज हम अपनी संस्कृतियों को भूलने लगे हैं। जिसे संरक्षण करना और उन्हें पुनः अपने भीतर उज्जीवित करने का अब समय आ चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र में असमिया लोक गीतों में निहित असमिया जनजीवन को खोजने का प्रयास किया जाएगा।

शोध का उद्‌देश्य : प्रस्तुत लघु शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य कुछ इस प्रकार हैं :

(क) असमिया बिहूगीतों में प्रतिफलित असमिया लोक संस्कृति पर प्रकाश डालना।

(ख) शोध कार्य का दूसरा उद्देश्य यह है कि असमिया लोक संस्कृति को राष्ट्रीय एवं विश्व दरबार में प्रतिष्ठित कराना एवं भारत की भावात्मक एकता में समृद्धि लाना।

शोध की पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र को संपूर्ण करने के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का सहारा लिया जाएगा :

(क) संपूर्ण शोध प्रक्रिया मूलतः विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति के आधार पर किया जाएगा।

(ख) विवरणात्मक पद्धति।

(ग) असमिया लोकगीतों को लिप्यांतरण पद्धति के माध्यम से हिंदी भाषा में लाया जाएगा।

उसके बाद उनका भावानुवाद किया जाएगा।

शोध की सीमा : असमिया लोकगीत अपने आप में ही एक अथाह सागर हैं, इसके कई पहलू सामने आते हैं। इस शोध पत्र में केवल बिहू गीतों में प्रतिफलित लोक संस्कृति की आलोचना की जाएगी।

मूल विषय : "लोक साहित्य प्रत्येक जाति की आशा-आकांक्षा हर्ष-विषाद, भय-भक्ति लोक विश्वास मानसिक विचारधारा आदि का परिचय वहन करता है।"[1] असम में विभिन्न प्रकार की जनगोष्ठियों का समाहार पाया जाता है। यहां सभी लोग बड़े ही प्यार से मिलजुल कर रहते हैं। इसीलिए सभी एक दूसरे की लोग परंपराओं और नियमों का पालन करते हैं। डॉ. वसंत भट्टाचार्य के कलम से, "प्रकृति के साथ मानवीय चेतनाओं की एकात्मकता, कर्म की प्रति निष्ठा, आत्मरक्षा की चेष्टा, आदि विविध अनुभव और अनुभूतियां लोकगीतों के माध्यम से प्रकाशित होती हैं।"[2]

लोकगीतों की विशेषता कुछ इस प्रकार पाई जाती है :

(क) लोकगीत प्राचीन समय से ही एक समाज के लोगों के मुख-मुख में प्रचलित होता चला आता है।

(ख) असमिया लोकगीतों में असम के ग्रामीण जीवन की सरलता की छवि झलकती है।

(ग) असमिया लोकगीतों में असम प्रांत में मान्य लोक विश्वास, रीति नीति, उत्सव आदि का भी वर्णन मिलता हैं।

(घ) इन लोकगीतों में असम के इतिहास का भी उल्लेख होता है और अतीत का गौरव गान भी होता है।

ऐसे और कई विशेषताओं से समृद्ध हैं लोकसाहित्य एवं लोक गीत, जो एक भाषा और साहित्य की जड़ होती है। किसी भी भाषा के साहित्य के उत्थान में लोग साहित्य का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान होता है ।

असमिया लोकगीतों को कई प्रकारों में बांटा गया है जिनमें से प्रमुख हैं :

"अनुष्ठानमूलक
कर्मविषयक

आख्यानमूलक/वर्णनप्रधान
जूना और धेमेलीया गीत आदि।''[3]
बिहू अनुष्ठानमूलक गीतों के अंतर्गत आता है।
बिहू गीतों में प्रतिफलित असमिया लोक संस्कृतिः

''बिहू गीत मौसम का गीत है, इसकी भाषा सहज और आडंबर विहीन है इन गीतों में यौवन का उन्माद, आशा-आकांक्षाएं यौनस्पृहा आदि सभी तत्व निहित होते हैं।''[4] वसंत ऋतु में गाए जाने वाले इस कृषि निर्भर गीतों का प्रचलन असम में बहुत पुराना है। यह असम के सबसे लोकप्रिय गीत माने जाते हैं। असम का मूल उत्सव भी बिहू ही है, जो तीन भागों में बांटा जाता है।

रंगाली बिहू,
कंगाली बिहू और
भोगाली बिहू।

इस शोध पत्र में जिन बिहू गीतों का उल्लेख किया जाएगा, वे रंगाली बिहू में गाए जाने वाले गीत हैं। बंगाली बिहू को ब'हाग बिहू भी कहा जाता है। ब'हाग का अर्थ होता है वैशाख महीना। इस महीने में हमारे यहां नए साल का उत्सव मनाया जाता है और तब विशेष करके युवक युवतियां अपने मन की भावों को उजागर करते हुए गीत नृत्य के माध्यम से इन गीतों को प्रस्तुत करते हैं। बिहू मूलतः कृषि उत्सव है। ऋतुराज वसंत के आगमन से कृषि कर्म का भी शुभारंभ होता है और इस समय यहां उत्सव समय मनाया जाता है। यहां युवक युवतियों के प्रेम का प्रतिफलन होता है :

''रंगाकोई गामोसा माजे शेल दिया
तुमि तामुल काति खुवा,
लाहोरी हातेरे थुरियाइ थुरियाइ
आमाको एखन दिया।''

इन पंक्तियों में केवल युवक युवती के प्रेम का वर्णन ही नहीं, बल्कि असम की लोक संस्कृति का भी सुंदर चित्रण हुआ है। जिस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका को उपहार देता है उसी प्रकार प्रेमी को भी अपनी प्रेमिका से एक भेंट की अपेक्षा अवश्य रहती है। असमिया लोक परंपरा में हाथों से बुनी हुई गामोसा (हाथों से बुना हुआ एक वस्त्र, जो नए साल में असम के लोग एक दूसरे को भेंट स्वरुप प्रदान करते हैं, किसी भी औपचारिक अनुष्ठान में गामोसा का होना अनिवार्य है) का हमारे यहां बड़ा ही आदर और सम्मान है। इस नए साल में प्रेमिका अपनी प्रेमी को अपने हाथों से बनी हुई गामोसा उपहार स्वरुप देती है। असमिया लोक परंपरा

में तांबूल खान की परंपरा है, प्रेमी निवेदन करते हैं कि तुम अपनी सुंदर हाथों से एक कटा हुआ तांबूल हमें भी अवश्य देना। यहां हम यह देख सकते हैं कि बिहू गीतों में केवल प्रेम का आदान-प्रदान ही नहीं बल्कि असमिया लोक संस्कृति का भी निदर्शन मुखर हुआ हैं।

प्रेमी अपनी प्रेमिका से बिछड़ने के बाद एक प्रकार से सांसारिक मोह माया से ऊब जाते हैं, अपनी प्रियतमा के साथ एक संसार बसाने का उनका जो सपना था वह अब टूट चुका है। उन्होंने किस प्रकार अपने आने वाले जीवन के लिए सपने संजोए थे उसका वहिःप्रकाश कुछ इस प्रकार है :

''बिया करिम बुलि ब'र घर साजिलो
गरू बंधा गोहालि ह'ल''

अर्थात तुमसे विवाह करने के लिए मैंने ब'र घर यानी कि एक बड़ा घर बनाया था, साथ ही गाय बांधने के लिए गोहालि (गाय बांधने की जगह) भी बनाया था। पर अब जब तुम ही नहीं आओगी तो इन सबका मैं क्या करूंगा? प्रस्तुत पंक्तियों में असमिया घर का चित्रण होने के साथ-साथ के गोहालि के माध्यम से यह चित्रित किया गया है कि ग्रामीण लोग मूलतः खेती से जुड़े हुए होते हैं और गाय का प्रसंग इस बात का प्रमाण है।

एक दूसरी बिहू गीत की पंक्तियों का उदाहरण पेश करते हैं, जहां असमिया वस्त्र और अलंकारों का वर्णन हुआ है। अपनी अत्यंत सुंदरी प्रियतमा के सुंदरता को निहारता हुआ प्रेमी कुछ इस प्रकार उसकी रूप की प्रशंसा करता है :

''हातोरे शुवनि हातोर गाम खाः
ककालोर शुवनि रिहा,
मुर'रे शुवनि मुर'रे सेउता
गलध'नर शुवनि खोपा''

प्रथम पंक्ति में कहां गया है कि प्रेमिका ने हाथ में जो गाम खारु (सोना अथवा चांदी से बनी हुई गोल कंगन) पहना है वह अत्यंत सुंदर लग रहा है। उसकी कमर को सुंदर बना रही है रिहा (रेशम से बुना वस्त्र, जो यहां की महिलाएं शरीर के ऊपरी भाग में पहनती है) सिर को सुंदर बना रही है मांग रेखा और खोपा यानि कि जूड़े से उसका गर्दन शोभा पा रहा है।

यदि युवक और युवती दोनों एक दूसरे को पसंद करते हैं, परंतु घर वाले नहीं मानते हैं तो भाग जाने की भी परंपरा असम के कई ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित थी। लेकिन इसे यहां दंडनीय अपराध नहीं माना जाता है। केवल युवक को बाद में माफी मांगनी पड़ती है और हरजाना भी भरना पड़ता है। बाद में राजी खुशी सब

मान जाते हैं। प्रियतमा अपने प्रेमी को सचेत कर रही है कि :

''बिहू मारि थाकोते पलुआइ निनिबा
भरिब लागिब' धन''

बिहू नृत्य करते समय मुझे भगाकर मत ले जाना अन्यथा तुम्हें बाद में धन भरना होगा।

ऐसे अनेक बिहू गीत असम प्रांत में प्रचलित है जहां असमिया लोग जीवन का रहन-सहन खान पान परंपरा विश्वास आदि का सुंदर प्रतिफलन हुआ है।

उपलंधियां

प्रस्तुत शोध पत्र की उपलब्धियां निम्नलिखित हैं :

(क) बिहू गीतों में असमिया लोक परंपरा और लोग जीवन और संस्कृति का बहुत ही सुंदर चित्रण हुआ हैं।

(ख) इन गीतों के देवनागरी लिपि में संरक्षण, प्रकाशन ओर प्रचार के माध्यम से भारतीय साहित्य समृद्ध होगा। इस कार्य से भारत की भावात्मक एकता बढ़ेगी और विश्व दरबार में भी असमिया सरस्वती का मान बढ़ेगा।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि लोकगीत किसी भी समाज के रीति-नीति, परंपरा आदि का वाहक है। इनमें लोक जीवन और वहां के लोगों की संस्कृति प्रतिफलित होती हैं। असमिया लोकगीतों में बिहू का स्थान बहुत ऊंचा है और यह यहां की सबसे लोकप्रिय गीत है। इन गीतों में युवा मन की प्रेम भावनाओं के साथ-साथ असमिया ग्रामीण जीवन के कई पहलुओं का चित्रण हुआ हैं। इसके अतिरिक्त इन गीतों में असमिया खानपान, वस्त्र, रीति-नीति, परंपरा आदि का भी वर्णन मिलता है। बहरहाल यह कहना अनुचित न होगा कि यह अत्यंत समृद्ध साहित्य है, जिसके प्रचार और प्रसार का दायित्व सभी शोधकर्ता, विद्वानों एवं साहित्य प्रेमियों का है।

संदर्भ

1. शर्मा, हेमंत, असमिया लोकगीत संचयन, तृतीय, पृ. 7 गुवाहाटी, असम, 2000
2. भट्टाचार्य, डॉ. वसंत कुमार, असमिया लोकगीत समीक्षा, प्रथम, पृ. 7 नलबारी, असम, 1997
3. भट्टाचार्य, डॉ. वसंत कुमार, असमिया लोकगीत समीक्षा, प्रथम, पृ. 8, नलबारी, असम, 1997
4. गोस्वामी, जतीन्द्रनाथ, असमिया साहित्यर चमू बुरंजी, चतुर्थ, पानबाजार, गुवाहाटी, असम, 1986

11. भारतीय विविधता में राष्ट्रीय एकता का मूल्य और उसकी आवश्यकता

डॉ. आरले श्रीकांत लक्ष्मणराव
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
श्री राधा कृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार

जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं ॥
मैथिलीशरण गुप्त

किसी भी राष्ट्र की सुख-समृद्धि के लिए वहाँ के देशवासियों का हृदय भावों से भरा एवं उससे रसधाराएँ बहती रहना और अपने देश के प्रति प्रेम से युक्त होना आवश्यक है अर्थात् देश-प्रेम के साथ-साथ देश-भक्ति का संगम अनिवार्य होता है। केवल इसलिए नहीं कि हमने इस देश में जन्म लिया है बल्कि देश की भाषा, संस्कृति, इतिहास, धर्म और संविधान आदि के प्रति भावनात्मक जुड़ाव के कारण सर्वस्व अर्पण का भाव सदा हृदय में पलता है। यही भाव हमें मनुष्यत्व प्रदान करता है। हम अपने संविधान के प्रति निष्ठावान होकर ही अपनी राष्ट्रीय एकता को संजोए रख सकते हैं।

राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए हमारा देश लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की जयंती (31 अक्टूबर) के अवसर पर राष्ट्रीय एकता दिवस मनाता है। जिसके मूल में राष्ट्रीय एकजुटता के प्रयत्नों को स्वीकार करना होता है। सरदार पटेल ने देश की एकजुटता के लिए प्रयत्न करते हुए 562 देशी रियासतों को भारत संघ में एकीकृत करने में महती भूमिका निभाई थी।

भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान-विज्ञान, कृषि, तकनीकी, व्यापार और वाणिज्य आदि क्षेत्रों में समृद्ध है।

जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती हैं बसेरा
वो भारत देश है मेरा। राजेंद्र कृष्ण

बचपन में बड़े चाव से गाने वाले गीत का वास्तविक अर्थ आज हम समझने लगे हैं। हम सभी प्रकार से धनी हैं। हमारा देश विविधता से भरा हुआ देश है। विश्व में इसकी पहचान अन्य देशों से भिन्न है। यह धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय, भाषायी, रंगीय, वैचारिक भिन्नता और सामाजिक-आर्थिक असमानता हमें अवश्य दिखाई देती है। परंतु इसकी वजह से राष्ट्रीयता में कहीं कमी नहीं आती है। इस बात से मुँह नहीं फेरना चाहिए कि देश के संपूर्ण विकास में यह विविधताएँ समस्या बनकर समय-समय पर उभरकर अवश्य आती रही हैं परंतु इनसे राष्ट्रीय एकता में वृद्धि ही हुई है।

धार्मिक भिन्नता के होते हुए भी हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी धर्म के लोग आपस में सौहार्दपूर्ण भाव से जीवन जीते हुए दिखाई देते हैं। परंतु ओछी राजनीति के कारण जब-जब स्वार्थ जगता रहा तब-तब देश को संकट का सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए सन् 1947 ई. में भारत का बँटवारा सांप्रदायिकता का द्योतक है। परंतु कौन बताए कि :

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्ताँ हमारा। अल्लामा इकबाल

सांप्रदायिकता अंग्रेजों की देन है। हिंदुस्तान में आज भी हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के साथ रहते हैं। चंद राजनीतिक बुद्धिजीवियों के चलते हम मतभेद कर लेते हैं। इसका समाधान बताते हुए रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि, ''यह समाधान है मुसलमानों के भीतर इस भाव को पुष्ट करना कि भारत उनका देश है और भारत के लिए उन्हें उसी प्रकार जीना और मरना चाहिए जिस प्रकार अन्य देशों के लोग अपने देश के लिए जीने और मरने में आगा-पीछा नहीं करते हैं। यह समाधान है मुसलमानों के हृदय की आशंका को निर्मूल कर देना, जिससे वे हिंदुओं के बहुमत से भय खाते हैं।''

मेरा सर्वप्रथम कार्य यह होगा कि मुसलमान बंधुओं को विश्वास दिलाना कि यह देश जितना हिंदुओं का है उतना ही आपका भी। इससे उनमें यह भाव जगे कि :

वतन में मुझको जीना है, वतन में मुझको मरना है,
वतन पर जिंदगी को एक दिन कुरबान करना है। सीमाब अकबराबादी

मुझे मेरे देशवासियों को बताना आवश्यक होगा कि धर्म नहीं, उसकी रूढ़ियाँ, गलत परंपराएँ हमें गलत राह पर ले जाती हैं। धर्म कभी बुरा नहीं होता है, बुरी होती हैं सड़ी-गली रूढ़ियाँ, परंपराएँ।

दूसरी बड़ी समस्या जातीयता की है। प्रत्येक धर्म जातियों में बँटा हुआ है। किंतु व्यक्ति की पहचान जाति से नहीं ज्ञान से होनी चाहिए :

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार की, पड़ा रहन दो म्यान ॥ संत कबीर

जातीय भिन्नता का परिणाम ही सामाजिक भिन्नता है। परंतु इसे मिटाने के लिए उचित अवसरों को सभी के लिए उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। हमारे संविधान में इसका प्रावधान किया गया है। आज इसका लाभ उठाकर मेरे देश का निचला तबका भी ऊपर उठ रहा है, आवश्यकता है तो मात्र उस संविधान का ज्ञान कराने की। एक शिक्षक के नाते यह मेरे साथ-साथ प्रत्येक शिक्षित नागरिक का कर्तव्य है।

हमारा देश विविध प्रांतों से मिलकर बना है। हमने कहा है कि देश के प्रथम गृह मंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल ने देश की एकता के लिए इन प्रांतों को एक साथ लाया है। इस प्रांतीयता के परे जाकर एक राष्ट्रभाव मेरे देशवासियों के दिलों में है। इन प्रांतों से देश की शोभा बढ़ती है।

जितने प्रांत उतनी ही भाषाएँ भी हैं। एक भाषी के मन में दूसरी भाषा के प्रति प्रेम-भाव जगाना आवश्यक है। एक-दूसरे की भाषा के प्रति सम्मान-भाव होने से राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती है। प्रेमचंद के वक्तव्य को हमें हमेशा याद रखना चाहिए, 'जब मैं उर्दू में सोचता हूँ तो देवनागरी में लिखता हूँ और जब देवनागरी में सोचता हूँ तब उर्दू में लिखता हूँ।' इसे कहते हैं भाषाई सौहार्द। इसे जगाना हमारा परम कर्तव्य है।

हमारे देश में इन सभी विविधताओं को उचित शिक्षा के माध्यम से एकता में परिवर्तित किया जाता है। हम शिक्षक होने के नाते प्राथमिक शिक्षा में देश की एकता के पाठ पढ़ा कर राष्ट्रगीत, राष्ट्रगान, महान व्यक्तियों का परिचय आदि के माध्यम से बालकों में देशभक्ति निर्माण करना आवश्यक है। युवाओं को संविधान, कला, साहित्य, राष्ट्रध्वज आदि के प्रति उचित ज्ञान देकर उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए। उन्हें जगाने का कार्य निरंतर करते रहना चाहिए।

महामंत्र ऋषियों का अणुओं परमाणुओं में फूंका हुआ :

''तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है, नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी है नहीं

पूरा यह विश्व-भार''

जागो फिर एक बार! सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों को भी एक होना उतना ही आवश्यक है। यह दल भले ही वैचारिक दृष्टि से भिन्न हो परंतु राष्ट्रीयता की दृष्टि से अभिन्न हैं। उदाहरण के लिए सन् 1947 ई. में भारतीय स्वतंत्रता के लिए सभी एक होकर लड़े थे। सभी के दिल में एक ही भाव गूँज रहा था :

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झंडा ऊंचा रहे हमारा।। श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

आज भी देशी पूँजीपतियों द्वारा होने वाले अन्याय के खिलाफ लड़ते हुए देशभक्ति का भाव सर्वोपरि होना आवश्यक है :

हम सितम लाख सहें शायके वेदाद रहें
आहें थामे हुए, रुके हुए फरियाद रहें
हम रहें या न रहें ऐसे रहें याद रहें
इसकी परवा है किसे शाद कि नाशाद रहें
हम उजड़ते हैं तो उजड़े वतन आबाद रहे।
हों गिरफ्तार तो हों, पर वतन आजाद रहे ॥ त्रिशूल

स्वार्थ की राजनीति ओछी राजनीति होती है। राजनीतिक दलों के प्रामाणिक रूप से कार्य करने से देश उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ता है। यही राजनीतिक दल देश का नेतृत्व करते हैं। हम नागरिकों का यह दायित्व है कि सही राजनीतिक दल के हाथ में देश को सौंपे। नहीं तो हमारा वही हाल होगा जो शाहजहाँ के काल में मजदूरों का हुआ था :

यह अपने हाथ में तहजीब का फानूस लेती है,
मगर, मजदूर के तन से लहू तक चूस लेती है। मजाज लखनवी
एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक। साहिर लुधियानवी (ताज-महल)

इन सभी बिंदुओं में और अधिक एकता लाने के लिए सबसे बड़ा कारगर हथियार है, साहित्य। साहित्यिक रचनाएँ सभी के हृदय पर गहरी चोट करने में कामयाब रही हैं। चाहे वह किसी भी भाषा का साहित्य हो। जब-जब हमारे देशवासी देश के प्रति अपने कर्तव्य को भूले तब-तब उन्हें महावीर प्रसाद द्विवेदी की यह पंक्तियाँ सुनायी जानी चाहिए :

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है ॥

और रचनाकार इसके लिए ऐसी रचनाओं का निर्माण करें जिससे सोयी हुईं जनता को झकझोर दे :

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये ॥ बालकृष्ण शर्मा नवीन

हमारे देश की रचना ऐसी है कि उसके हर ईंट का आकार अलग-अलग है। लेकिन उसकी बनावट बहुत पक्की है। इनसे बने देश की इमारत की नींव बहुत मजबूत है। इस देश पर अनेक हमले हुए हैं फिर भी यहाँ की संस्कृति आज भी उसी निखार के साथ पल रही है, पनप रही है। बहुत सारे देश उजड़ गए हैं पर हिंदुस्तान अभी भी वैसा ही है और रहेगा :

यूनान-ओ-मिस्त्र-ओ-रोमा, सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशा हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-जहाँ हमारा
सारे जहां से अच्छा, हिंदोस्ताँ हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा। अल्लामा इक़बाल

यह केवल और केवल राष्ट्रीय एकता के कारण ही संभव हो पाया है। इसीलिए हमें एकता के सूत्र में बँधकर ही आपसी सद्भावना से जीवन व्यतीत करना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण मानवीयता होती है, एक देश को जीवंत रखने में। यही मानवीयता जब एकता में परिवर्तित होती है तब आवाज गूँजती है :

एक है अपनी जमीं, एक है अपना गगन
एक है अपना जहाँ, एक है अपना वतन
अपने सभी सुख एक हैं, अपने सभी गम एक हैं
आवाज दो, आवाज दो हम एक हैं, हम एक हैं। जाँ निसार अख़्तर

इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय एकता के मूल में देशवासियों के हृदय में पल रहा भारतीयता का भाव है। प्राचीन काल से ही भारत की समृद्धता सभी क्षेत्रों में सिद्ध है। हमारे देश में धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय, भाषायी, रंगीय और वैचारिक विविधता के होते हुए भी इससे राष्ट्रीय एकता में वृद्धी ही हुई है। ओछी राजनीति के कारण ही यह सभी बिंदु संकट बनकर उभरने का प्रयास करते रहे हैं। जिसे संविधान के ज्ञान से दूर किया जा सकता है। भारत में उचित शिक्षा से विविधाता में एकता लाने का कार्य किया जाता रहा है। राष्ट्रीय एकता के लिए युवाओं का जागृक रहना अति आवश्यक है। साथ ही राजनीतिक दलों की एकता भी उतनी ही आवश्यक होती है। एकता का भाव जगाने का कार्य साहित्य करता है। अनेक

संकटों को झेलकर भी भारत की संस्कृति प्रखरता के साथ आज भी बनी हुई है। जिसके मूल में राष्ट्रीय एकता तथा मानवीयता है।

संदर्भ

1. https://www.hindwi.org/kavita/swadesh-gayaprasad-shukla-sanehi-kavita
2. https://rhymeslyrics.com/jahan-daal-daal-par/
3. https://www.rekhta.org/couplets/mazhab-nahiin-sikhaataa-aapas-men-bair-rakhnaa-allama-iqbal-couplets?lang=hi
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 2003, पृ. 614
5. https://www.gaonconnection.com/mehfil/life-story-of-and-poems-of-seemab-akbarabadi-famous-urdy-poet
6. https://www.google.co.in/books/edition/Kabeer_Dohawali/Rc1UBQAAQBAJ?hl=en-gbpv=1 (नीलोत्पल, कबीर दोहावली, पृ. 24, प्रभात प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021, इबुक फॉरमेट)
7. http://kavitakosh.org/kk/
8. http://kavitakosh.org/kk/
9. नरेशचंद्र चतुर्वेदी, डॉ. उपेन्द्र (संपा.), राष्ट्रीय कविताएँ, साहित्य निकेतन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ. 51
10. http://kavitakosh.org/kk/
11. https://www.rekhta.org/nazms/taaj-mahal-taaj-tere-liye-ik-mazhar-e-ulfat-hii-sahii-sahir-ludhianvi-nazms?lang=hi
12. नरेशचंद्र चतुर्वेदी, डॉ. उपेन्द्र (संपा.), राष्ट्रीय कविताएँ, साहित्य निकेतन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ. xxxvi (भूमिका से)
13. https://www.hindwi.org/kavita/wiplaw-gan-balkrishna-sharma-naveen-kavita
14. http://kavitakosh.org/kk/
15. https://www.rekhta.org/nazms/ham-ek-hain-ek-hai-apnii-zamiin-jaan-nisar-akhtar-nazms?lang=hi

12. लोक साहित्य में मानवीय मूल्य

डॉ. खाजी एम.के.

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

शंकरराव चव्हाण महाविद्यालय, अर्धापुर

तह. अर्धापुर, जि. नांदेड

मानवी जीवन में लोक साहित्य का बहुत गहरा संबंध है। मनुष्य ने सृष्टि और मानव जाति के विकास के लिए निरंतर प्रयास किया है। मानवी जीवन अनेक पहलुओं को रेखांकित करना साहित्य का लक्ष रहा है। साहित्य में मानवी जीवन जिससे प्रभावित होता है उन सभी बिंदुओं को समाविष्ठ किया जाता है। राजनीति, आर्थिक नीतियाँ, धार्मिक गतिविधियाँ, सामाजिक सहोदर, सांस्कृतिक विरासत, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, परंपरा का निर्वाह, तीज-त्योहार, भाषा, जीवन शैली, खेल-कूद आदि संकल्पनाएँ मानवी जीवन सें मेल रखती है। इन सभी का प्रभाव मानव पर होता है। कई सदियों से मानवी मूल्यों की, सांस्कृतिक विरासत आदि मानवी हृदयस्थल पर प्रभावित करते है। सुख-दुख के सभी साधनों से मानवी जीवन गुजरता है। ऐसे में उसके हृदय को परंपरागत मानवी जीवन शैली का सीधे प्रभाव पड़ता है। जिसमें उसे और उसके मन को व्यक्ति, समाज, देश एवं सृष्टि के साथ तादात्म्य संबंध स्थापित होते है। मानवी जीवन में मानवी संवेदना का क्षेत्र बहुत निश्चल एवं गंभीर स्वरूप का रहा है। मानव की हर एक संवेदना उसके जीवन शैली से जुड़ जाती है। वह जिस क्षेत्र में, जिस जाति-धर्म में, जिस आँचल में, जिस परिवेश में जन्म लेता है वही संस्कार उसी पर होते है, जो वह जीवन भर नहीं भूलता। बचपन से लेकर जवानी तक और जवानी से बुढ़ापे तक एक दुनियां वह संजोता है, जिसमें उसकी संवेदना आत्मा की भूमिका का निर्वाह करती है।

भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत प्राचीनतम होने के साथ-साथ विश्व के सबसे महत्वपूर्ण गंभीर एवं दीर्घकालीन टिकने वाली विरासत है। कहा जाता है कि

'समय के साथ हर चीज अपना स्वरूप बदलती है किन्तु कालजयी हर बात अपने आपको दोहराती है। वर्तमान युग सूचना एवं प्राद्योगिकी का युग है। आधुनिक तंत्रज्ञान के तेजी से विकसित होने से परंपरागत जीवन मूल्य बहूत पीछे छूट गए हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमंडलीकरण के कारण मानवी जीवन में समय का अभाव, दौड़ भरी जिन्दगी, भौतिकवाद से प्रभावित जीवन प्रणाली, विघटित होते मानवी मूल्य आदि औपचारिक मानवी जीवन प्रणाली का प्रभाव बढ़ गया है और अनौपचारिकता समाप्त होती जा रही हैं। इस समय मानव का जीवन बिखरे मोतियों की तरह बिखर गया है। इस युग में भी लोक साहित्य में मानवी मूल्यों से भरा हुआ है।

अनुसंधान के उद्देश्य

1. लोकसाहित्य की परंपरा को नई पीढ़ी के सम्मुख प्रस्तुत करना तथा उसमें निहित मानवीय मूल्यों का परिचय कराना।
2. लोकसाहित्य की प्राचीन परंपरा को प्रासंगिकता की दृष्टि से मूल्यांकन करना।
3. मानवी आचरण की सभ्यता के लिए लोकसाहित्य में निहित मानवी मूल्यों के महत्व को सिद्ध करना।

अनुसंधान की परिकल्पना

1. भारतीय इतिहास में लोकसाहित्य विशाल एवं संपन्न परंपरा है, जिसमें मानवी मूल्यों का ख़ज़ाना है।
2. लोकसाहित्य लोकगीत, लोककथा, लोकवार्ता, लोकगाथा, लोकनृत्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, मुकरियाँ आदि पहलुओं में लोक से जुड़े होते हैं, जिस कारण उसमें मानवी मूल्य होते हैं।
3. मानवी जीवन में साहित्य और लोक साहित्य का बहुत गहरा संबंध है।

अनुसंधान पद्धति

आधुनिक जीवन में लोक साहित्य में मानवी मूल्यों का अनन्यसाधारण महत्व एवं उपयोगिता को प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में विश्लेषणात्मक एवं उदाहरणात्मक पद्धति के आधार पर रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

लोक साहित्य में मानवी मूल्य

लोक साहित्य हमेशा कालसापेक्ष एवं परिवेश सापेक्ष साहित्य होता है। लोक

साहित्य में मानव के उदात्त भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति हुई है, इसलिए इसमें मानवी जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति होती हैं। लोक साहित्य में संपूर्ण समाज का चित्रण होता है। कहा जाता है कि जहाँ लोक वहाँ लोक साहित्य रहता है। जिसमें समाज की अच्छाई-बुराई, सुख-दुख, रीति-रिवाज, खेल-कूद, उपदेश आदि का मनोहारी चित्रण मिलता है। भारत का चाहे जो भी समाज हो उसमें विवाह के शुभ अवसर पर गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में खुशी भी होती है और माता-पिता को छोड़ कर जाने का दुख भी होता है। इस लोकगीत में दुल्हन की विदाई के प्रसंग के दुख को व्यक्त किया गया है जिसमें बेटी अपने माता-पिता के घर को छोड़कर पति के घर चली जाती है। यह रस्म को वह सदियों से निभाती आई है। यही मानवी मूल्य है, जो सदियों से जीवित है। इस मूल्य को लोकसाहित्य ने जीवित रखा है :

''बापू हो मेरे बापू मेरे पास ता आओ
रे मैं तो चली बिराने के गांव।''[1]

बंजारा संस्कृति में हँसी-खुशी और छेड़-छाड़ के बाद विदा की बेली पर डोली में बैठी कन्या आँखों में आँसू और रूँधे गले क्षण भर रूकते हुए कहती है कि :

''छिन भर डोला ल बिलमई ले कहा भैया,
करि लेतेव ददा ल भेंटे कि हाय जू
इसका जवाब नम गले से पिता जी देते हैं कि :
अतेक दिन बेटी मोर घर रहे,
आज बेटी भये वो बिशन कि हाय जू।''[2]

इसी तरह विवाह, रीति, परंपरा, त्योहार, पर्व, उत्सव, मेले आदि के समय प्रत्येक समूह की अपनी-अपनी विशिष्ट परंपरा होती है। लोक साहित्य के द्वारा वह परंपरा जीवित है, जिसके कारण आज भी मानव मानव से जुड़ा हुआ है।

लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति का निर्वाह हुआ है। जिसमें उनका सपूर्ण जीवन की झाँकी दिखाई देती है। सुख-दुख, हर्ष-उल्हास एवं पर्व के साथ-साथ उपदेश भी दिया जाता है। शराबी पति को लोकगीत के माध्यम से उपदेश देती हुई पत्नी मानवी मूल्यों की स्थापना कर रहा है।

''तनी माना ना कहनवां हमार हो पिया।
सगरों उमरिया शराबे में बितवले,
चढ़ल जवानी मोर माटी में मिलवले,
अबहूँ से होशवा सम्हारा हो पिया।''[3]

इसी तरह गरीबी, शोषण, उपदेश के साथ रीति, परंपरा आदि संपूर्ण सामाजिक जीवन लोक साहित्य में होता हैं। लोक साहित्य के माध्यम से गीत संगीत के द्वारा

मानवी मन का मनोरंजन होता है और मानवी मूल्यों की स्थापना भी की जाती है। कई समुह में उत्सव पर्व के समय तथा थकान दूर करने के लिए लोकगीत के माध्यम से मनोरंजन किया जाता है। आदिवासी लोकगीतों में वह अपने घर से दूर होने की व्यथा, पीड़ा, परिजनों का वियोग आदि भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रियतमा के वियोग में वह कहती है कि :

''ओ दीदी मोर पिय गे परदेस
न कोनो आवे, न कोनो जावे
न भेजे संदेस, पिया गे परदेस,
काकर बर संवारो केस
ओ दीदी मोर... ।''[4]

लोकसाहित्य में जीवन के सुख-दुःख, मिलन विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं। इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है। ग्रीष्म, वर्षा और बसंत का प्रभाव अधिक होता है। अधिकांश लोकगीत इसी काल में गाए जाते है, जिसमें मानवी मूल्यों अनगिनत कहानियाँ को रेखांकित करते हुए सहज जीवनशैली को अपनाते हुए लोकसाहित्य की स्थापना की जाती है।

''ननदी-भौजिया मिले के गेहुँवा पिसनीजी
गरमी के कारनवाँ जिया अकुलावे करे ना।''[5]

लोक साहित्य अपने आँचलिक परिवेश एवं समुह से जुड़ा हुआ होता है। जिसमें भौगोलिक स्थिति का वर्णन पाया जाता है। इसमें नदी, पर्वत, ऋतु, प्रत्येक ऋतु में उत्पन्न फसल का चित्रण हैं। जिसमें परिवेश की आँचलिकता, भौगोलिकता तथा आर्थिक दशा का वर्णन निहित है। किसी समुह की विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए लोक साहित्य का मूल्य बढ़ता है। लोक साहित्य के अभाव में किसी समाज की संपूर्ण जानकारी को समझना संभव नहीं है। समाज की उन्नति एवं विकास में लोक साहित्य का महत्व अधिक है। भारत में अंग्रेज सरकार हर परिवेश के लोक साहित्य को जानने की कोशिश निरंतर करती रही हैं। ऐसे ही छत्तीसगढ़ के बंजारे अपने नृत्य और गीत के लिए बहुत प्रसिध्द हैं। छोटी बहन अपने पति द्वारा पीट जाने पर बड़ी बहन को अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती है कि :

''चार पैसा के लियेंव बतासा,
तेकर बर मोला मारिस
सैंया देवथें मोलागारी
दीदी वो मोला सहि नहीं जाय।''[6]

जनकल्याण के लिए लोक साहित्य अपनी उपयोगिता सिध्द करता है। इसमें किसी न किसी प्रकार के मानवी मूल्य निहित होते है।

निष्कर्ष : आधुनिक युग में आदमी, आदमी कम और मशीन ज्यादा बनकर रह गया है। भाग-दौड़ के जीवन में उसने लोक संस्कृति और लोक परंपरा को पीछे छोड़ दिया है। मानवी जीवन में लोक संस्कृति और लोक परंपरा को जीवित रखना है तो लोक साहित्य को पुर्नजीवित करना आवश्यक है। प्रदेश एवं समाज की विशेषताओं के आधार पर लोक साहित्य का निर्माण होता है। नई सदी को लोक साहित्य से अवगत करना होगा। लोक साहित्य के माध्यम से लोक संस्कृति और लोक परंपरा जीवित है, इसलिए मानवी मूल्य भी जीवित है अन्यथा भौतिकवादी जीवन ने कब के इसका गला दबोच लिया होता। मानवी जीवन सामुहिक एवं संस्कृति प्रिय एवं परंपरा पर के निर्वाह पर निर्भर होता है। लोक साहित्य के अध्ययन से समाज एवं देश के अतीत का गौरव गान होगा और वर्तमान समाज के लिए जीवित अभिलेख तैयार होगा। मृत मानवी संवेदना को जागृत करने का अमूल्य कार्य लोक साहित्य के द्वारा किया जा सकता है। लोक साहित्य में सामाजिक लोक जीवन का परिचय, लोक संस्कृति एवं लोक परंपरा की पहचान की जाती है। यह मनोरंजन के साथ साथ ज्ञान, विज्ञान तथा नीतिदर्शन भी कराता है। आँचलिक परिवेश के लालित्य से मुग्ध कराके सामाजिक, आर्थिक उन्नति का मार्ग सुकर करता है। जन-जन में मानवी मूल्यों के भाव जागृत कर उसे पशु होने से बचाता है इसलिए इसका अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

संदर्भ

1. लोक साहित्य : वैश्विक परिदृश्य, संपा. जी.एन. शिंदे, डॉ. पाईकराव, डॉ. गिते, यशवंत महाविद्यालय, नांदेड, संस्करण-2016, पृ. 59
2. आदिवासी संस्कृति एवं राजनीति, एम. कुमार, विश्वभारती पब्लिकेशन नई दिल्ली, सं. 2009, पृ. 178
3. हिन्दी साहित्यकारों के सामाजिक सरोकार, डॉ. सुमन सिंह, रोशनी पब्लिकेशंस, कानपुर संस्करण-2011, पृ. 131
4. लोक साहित्य : वैश्विक परिदृश्य, संपा. जी. एन. शिंदे, डॉ. पाईकराव, डॉ. गिते, यशवंत महाविद्यालय, नांदेड, संस्करण-2016, पृ. 59
5. वही, पृ. 245
6. आदिवासी संस्कृति एवं राजनीति, एम. कुमार, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली-2009, पृ. 178
7. लोकसाहित्यशास्त्र, डॉ. बापुराव देसाई, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2004

13. मराठी उपन्यासकार रा. रं. बोराडे के उपन्यासों में मानवीय मूल्य

डॉ. शिवाजी आनंदराव सूर्यवंशी
यशवंत महाविद्यालय, नांदेड.

मराठी ग्राम साहित्य विविध मूल्यों से प्रेरित है। खासकर की इसमें मानवी मूल्य का प्रभाव जादा तर दिखता है। मराठी ग्राम उपन्यासों में मानवी मूल्यों का वास्तव दर्शन दिखाई देता है, ''ग्रामीण कादंबरी ही स्वभावताच समाज चित्रणाकडे झुकणारी असल्याने तिच्याकडून सामाजिक वास्तव दर्शनाची अधिक अपेक्षा असते।''[1] बहुत सारे साहित्यिक साल 1960 के बाद ग्राम साहित्य महत्त्वपूर्ण हो गया ऐसा मानते है किंतु अगर देखा जाये तो मराठी ग्राम उपन्यासों की शुरुवात 1888 में हुई है; क्योंकि इसी साल बलीबा पाटील इस मराठी उपन्यास को कृष्णराव भालेकर ने लिखा। वहीं सारे अभ्यासक मानते हैं कि 1903 में लिखी हुआ पिराजी पाटील यह उपन्यास मराठी ग्रामीण उपन्यासों की शुरुआत है, लेकिन देखा जाये तो बलीबा पाटील यह एक उपन्यास होने के कारण साल 1888 में मराठी ग्रामीण उपन्यासोकी सुरुवात हुई ऐसा माना जाना जरुरी है। उपन्यासकारों की ढी में एक बहुत बड़ा नाम रा.रं. बोराडे इनका है. रा.रं. बोराडे इनके उपन्यासोमे वास्तव ग्राम दर्शन दिखाई देता है। ग्रामीण मानवता, उनका अस्ताव्यस्त जीवन, उनके उपर आयी हुई संकटे, उनका जीवन संघर्ष, खेती की समस्या, किसानो और कामगारो की समस्या इन सब बातो का निर्देश रा.रं बोराडे इनके उपन्यासों में होता है।

रा.रं. बोराडे इनोने बहुत सारे उपन्यास लिखे हुए। साल 1990 के बाद रा.रं. बोराडे इनके उपन्यासों ने बदला हुवा ग्राम जीवन और बदली हुई मानवी मूल्यो का चित्रण किया है। इस शोध निबंध में उनकी चारापाणी, राहाटपाळणा और मरनदारी इन उपन्यासों का चयन किया हुआ है। इन तीन उपन्यासों में उन्होंने अलग अलग ग्राम विषयों को न्याय देते हुए बहुत सारे मानवी मूल्यों का दर्शन करवाया है।

चारापाणी यह उपन्यास 1990 मे लिखा गया है। साल 1985 में महाराष्ट्र में विशेषता मराठवाडा में सुखा होने के कारण जीवन मान अस्ताव्यस्त हो गया था। खास करके जानवरों को खाने के लिए कुछ भी बचा नहीं था। खाने के लिए चारा और पीने के लिए पानी भी नहीं था। इसी विषय के बारे मे रा. रं. बोराडे इनोने चारापाणी यह उपन्यास लिखा, ''चारापाणी ही दुष्काळी परिस्थितीतील एका गावाच्या पाणी आणि चाऱ्याच्या समस्येवरची कादंबरी आहे एकाच वर्षाच्या दुष्काळाने ग्रामीण समाजावर विपरीत परिणाम होतो आणि तेथील माणसे समाज त्यामुळे अडचणी येतात।''[2] इस उपन्यास में उन्होंने सुखा होने के कारण खेती में किसी प्रकार का उत्पन्न किसानो को नहीं हुआ, पाणी और अनाज के लिये उनकी बड़ी कठीणाई हुई, जानवरो को चारा नहीं मिला, जिनके पास चारा था वो बहुत बड़ी किमतो में चारा बेच रहे थे। भूकमारी और पानी के कारण बहुत सारे जानवर रोज मर रहे थे, जानवरों को कुछ भी खाने को नहीं मिल रहा था, इसलिये किसान अपने जानवर बहुत कम कीमत में बेच रहे थे, कुछ संधी साधू लोग इस परिस्थिती का फायदा लेकर किसानो की लूट कर रहे थे, सारे परेशानी से जुझते हुए किसानों ने चारा छावणी में अपने जानवर दे दिय और जानवरों से अपना छुटकारा पाया। जानवर मरने से बेहतर है कि वो बेचें ऐसे किसान सोच रहे थे। खुद को ही खाने के लिए कुछ नहीं बचा हो तो जानवरो से कैसे खिलायेंगे यही सोच में किसान पड़ रहे थे, जानवर बेचना ही सही समझ रहे थे। सूखे के कारण मानवता कैसे खत्म हो गई, ये बताने का प्रयास चारापाणी इस उपन्यास में किया गया है, ''तिला गिलासभर पाणी पाहिजे होतं. मिळतं का ते बघायला आलती। तोल जाऊन विहिरीत पडली।''[3] इस विषय के बारे मे रा.रं. बोराडे इन्होंने चारापाणी ये उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में मानवतावाद ये मानवी मूल्य कैसे नष्ट हो जा रहा है ये बताते हुए किसी भी परिस्थिती में मानव ने आपनी मानवता खोनी नहीं चाहिये ये बताने का प्रयास किया है। मानव ने खुद को संभलते हुए सृष्टी के अन्य जीवो को भी संभालना जरुरी है ये संदेश देने का प्रयास उपन्यास में उपन्यासकार बोराडे इन्होंने किया है। चारापाणी इस उपन्यास का नायक सुखदेव है। सुखदेव पढ़ाई करके अपने गांव में आता है। गांव में सुधार करने का प्रयास करता है। लेकिन वहां के सरपंच आबाराव शेळके खुदको अच्छा मानते हुय गांव का नुकसान करते हैं। ये बात सुखदेव के जैसे ही ध्यान में आती है, वो आबाराव शेलके के साथ संघर्ष करना शुरू कर देता है, ''चाऱ्याअभावी आपल्या गावातल्या शेतकऱ्यांची कसे हाल सुरू आहेत हे सुखदेवाने बावणे साहेबांना सांगितलं''[4] उच्चशिक्षित होने के कारण सुखदेव सामाजिक सुधारणा करने का प्रयास करता है। आपने गाव के

साथ किसान और खेती की कैसी सुधारणा होगी, यह समझाने का प्रयास करता है, लेकिन उसको आबाराव शेलके और गांव के कुछ खलप्रवृत्ती के लोग विरोध करते हैं। ऐसे में ही गांव में सूखा पड़ता है, सूखे से बाहर निकालने का प्रयास सुखदेव करवाता है, लेकिन तब तक बहुत देर होती है और इस सूखे में खेती, किसान, गांव ध्वस्त हो जाता है। इसका बड़ा वास्तव चित्र उपन्यासकार ने किया है।

रा. रं. बोराडे इनका रहाटपाळणा यह एक और बहुत महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भी उन्होंने गांव की परिस्थिती, संघर्ष, व्यथा और बहुत सारे ग्राम मुद्दों को न्याय देने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में ही ग्राम महिलाओं का जीवन कितना भयानक होता है, ये बताने का प्रयास किया है। उनका यह उपन्यास 1996 में प्रकाशित हुआ। तत्कालीन ग्राम जीवन की परिस्थिती बताते हुए इस उपन्यास में उन्होंने महिलाओं का खासकर विधवा महिलाओं का जीवन कितनी कठिनाई से गुजरता है, इसके बारे में बहुत सारे विचार उन्होंने लिखे हैं, विधवापन आने के कारण समाज में कितनी मानहानी महिलाओं को झेलनी पड़ती है यह बताते हुए महिलाओं का जीना दुशबार हो जाता है। यह भी बताने का प्रयास किया है। इसके बारे में लोग अलग-अलग विचारों से कैसे प्रेरित होते हैं, इस बारे में भी उन्होंने इस उपन्यास में लिखा है।

रहाटपाळणा इस उपन्यास की नायिका रत्ना है। यह रत्ना शादी करने के बाद खुशिहाली में अपना जीवन बिताती है। लेकिन अचानक से उसके पती की मौत हो जाती है। तब से अपना जीवन जीते समय बहुत सारी कठिनाईओं का उसको सामना करना पड़ता है। खुद के जीवन की समस्या रत्ना कैसे तो मिटाने का प्रयास करती है। लेकिन उसी समय उसकी लड़की उम्र में आ जाती है। कुछ बिगड़े हुए लड़के उसकी लड़की को तकलीफ देने लगते है। इसके कारण रत्ना बहुत परेशान हो जाती है। खुद के समस्या से ज्यादा उसको लड़की की समस्या बहुत बड़ी लगने लगती है, ‘‘रानात निघता निघता रत्नांन पुष्पाकडे बघितलं। पुष्पा हाताच्या दुमडलेल्या घड़ीवर डोकं ठेवून अंथरणावर पडली होती।’’[5] खुद की लड़की को कैसे संभालना है इस समस्या में वो गिर जाती है। सब लड़कों से अपनी बच्ची सुरक्षित कैसे रखनी है, यह सवाल उसको सताने लगता है। हर बार इस सवालों के घेरे में ही रहती है। हमेशा डरी रहती है की अपनी बच्ची अब कैसे संभाले। ऐसे में उसकी जान पहचान एक इन्सान से हो जाती है। उस इंसान को भी बीबी न होने के कारण ओ रत्ना के साथ अपनी पहचान बड़ा देता है। इस इंसान को भी बड़ी उमर का लड़का रहता है। उसका नाम आदिनाथ है। ये आदिनाथ नाम का लड़का रत्ना की लड़की के साथ जान पहचान बड़ा कर आगे चल कर शादी कर लेता है।

ओ दोनो भाग जाकर शादी करते हैं। एक बहुत बड़ी समस्या चित्र के सामने आ गिरी पड़ती है। उसके बाद रत्ना खुद उस इंसान के साथ रहते हुए शादी कर लेती है। गांव भर में चर्चा शुरू होती है। बहुत सारे लोग रत्ना और उसकी लड़की, आदिनाथ और उसके पिता इन सबको अलग नजर से देखते है और उनका मजाक उड़ाते है। अंगात सदरा घालीत शिवनाथ बाहेरच्या खोलीत आला। पुष्पान लगेच त्याला इशारा केला। शिवनाथान तो इशारा लक्षात घेतला।’’[6] यह सारा विषय इस उपन्यास में बताते हुए उपन्यासकार बोराडे ने विधवा और विधुर की समस्या कितनी बड़ी होती है, यह बताने का प्रयास करते हुए इन लोगों के साथ भी मानवता से पेश आना चाहिए, ऐसे बताने का प्रयास उपन्यास में किया है।

मरणदारी यह उपन्यास भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। रा.रं. बोराडे इस उपन्यास में भी ग्राम जीवन को लिखते हुए बहुत सारी गांव की समस्याओं को लिखने का काम किया है। उपन्यास में ग्राम स्तर पर जो इलेक्शन होता है उसके बारे में लिखा है। ग्राम स्तर पर राजनीति कितनी भयानक रहती है, यह बताते हुए राजनीति के कारण ग्राम स्तर की मानवता कैसे खत्म हो जा रही है, यह भी बताने का प्रयास किया है। उनका ये उपन्यास 15 अगस्त 2004 को प्रकाशित हुआ। ग्राम स्तर का राजकारण बताते हुए इस उपन्यास मे ग्राम स्तर के बहुत सारे प्रश्नों को भी न्याय देने का प्रयास किया है। बहुत सारे समस्या में जीने वाले ग्राम स्तर के लोग राजकारण के कारण कैसे भिन्न-भिन्न पार्टिओं के शिकार हो रहे हैं। खुद का जिना छोड़कर राजनीति के पीछे कैसे भाग रहे है और एक दूसरे से कैसे दूर हो रहे उसका चित्र लिखने का काम उपन्यासकार ने किया है।

इस उपन्यास में दिगंबर नाम का नायक है। बुढ़ापे के कारण और भिन्न भिन्न प्रकार की बीमारियों के कारण वह परेशान रहता है। वह गांव के इलेक्शन मे बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इलेक्शन के दौरान ओ स्टजसए नइच्चए गीर पड़ता है। उपन्यास की शुरुवात विधानसभा पोट इलेक्शन के प्रचार से होती है। इलेक्शन के दरम्यान दिगंबर अपनी प्रचार सभाओं में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार बताता है। लोगों को वह विचार पसंद आते हैं, लेकिन एक प्रचार सभा में वह स्टेज से नीचे गिर पड़ते हैं। उनका लड़का योगेश, योगेश की बीबी मैथिली और दिगंबर की बीबी मंगला ये सब उनको हॉस्पिटल में ले जाते हैं, यह घटना इस उपन्यास में विस्तार से लिखी गई है, विरोधी दल इसका फायदा लेकर अपने प्रचार को अलग मोड़ में ले जाते हैं, और खुद का अस्तित्व निर्माण करते हैं। इलेक्शन के कारण इस उपन्यास का नायक दिगंबर खुद पर मृत्यु ओढ़ लेता है। उसके गिरने से विरोधी दल सक्रिय होकर अपनी गलत राजनीति अपनाता है। इस

इलेक्शन में वह गांव, गांव की समस्या, किसान, खेती और कोई भी समस्याओं पर ध्यान नहीं देता। राजनीति गांव के पारंपरिक संबंध कैसे खत्म कर देती है और उसके कारण मानवता कैसे नष्ट होती है, यह पूरा विषय इस उपन्यास में आया है।

रा.रं. बोराडे मराठी ग्रामीण साहित्य के एक बहुत बड़े उपन्यासकार हैं। उन्होंने लिखी हुई हर ग्राम उपन्यास में ग्राम स्तर का सकस और दर्जेदार वर्णन आया है। खासकर के ग्रामस्तर पर जो मानवी मूल्य है उनका बहुत महत्वपूर्ण वर्णन किया है। इसलिये उनका हर उपन्यास बड़ा ही महत्वपूर्ण रहता है।

संदर्भ

1. ग्रामीण कादंबरी आकलन आणि विश्लेषण, डॉ. रामचंद्र काळुंखे-कैलाश पब्लिकेशन, औरंगाबाद, पृ. 27
2. तत्रैव, 185
3. चारापाणी-रा.रं. बोराडे-साकेत प्रकाशन औरंगाबाद, पृ. 137
4. तत्रैव, 55
5. रहाटपाळणा, रा. रं. बोराडे-साकेत प्रकाशन औरंगाबाद, पृ. 23
6. तत्रैव, 46

14. प्राचीन भारत में ऐतिहासिक मानवीय मूल्य

डॉ. साईनाथ मारोती बिंदगे

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग

यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़

मूल्य की अवधारणा की एक लंबी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है और यह मनुष्य के विकासवादी चरण से शुरू होती है।[1] मूल्यों की संख्या में वृद्धि हुई है; क्योंकि इसे अभी भी जोड़ा जा रहा है। चूंकि मानव जीवन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जैसे कई क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है, इसलिए विभिन्न क्षेत्रों से कई मूल्य आए और विकसित हुए हैं। मानवीय मूल्यों का महत्व एक समृद्ध और सफल समाज तथा व्यक्ति के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये मूल्य व्यक्ति के विचारों, आचरण और जीवन शैली को मोल देते हैं और समाज को सजीव, सामर्थ्यपूर्ण और सांगठित बनाए रखते हैं। मानवीय मूल्यों का सही रूप से पालन करना व्यक्ति को नैतिकता, सहानुभूति और सामाजिक समरसता की ओर पहुँचाता है। आदिशंकर ने सुझाव दिया था कि, ''मानवीय मूल्यों के सूक्ष्म पहलुओं को पोषित करने की आवश्यकता होती है और उनको उतनी ही सावधानी से संरक्षित करने की आवश्यकता होती है जैसे कि कोई माँ गर्भ की रक्षा करती है मूल्य और आचारनीति की प्रकृती कपूर की भांती है अगर उन्हें ध्यान से संरक्षित न किया जाये तो वे वाष्पित हो जाते हैं।''

मानवीय मूल्य वह नैतिक और सामाजिक निर्देश हैं जो हमें सही और गलत के बीच अंतर करने में मदद करते हैं। मानवीय मूल्य उन नैतिक और सामाजिक मानकों का समूह है जो मानव समाज में निर्धारित करते हैं कि कैसे व्यक्ति और समुदाय का आचरण होना चाहिए। ये मूल्य इंसानी दृष्टिकोण, नैतिकता और सहानुभूति की मूल बुनियाद पर टिके होते हैं। इनमें अहिंसा, सत्य, न्याय, दया, करुणा, शांति, सहानुभूति, समरसता और सहयोग शामिल हैं जो एक समृद्ध और संबल समाज की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। मानवीय मूल्यों का महत्व जीवन में

अत्यधिक होता है, क्योंकि ये मूल्य व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय और जीवन शैली को प्रभावित करते हैं।

प्राचीन काल में मानवीय मूल्य का स्वरूप : प्राचीन भारत में मानवीय मूल्यों का स्वरूप बहुत उच्च और समृद्ध था। भारतीय सभ्यता, वेदों, उपनिषदों, धर्मग्रंथों, और अर्थशास्त्रों में भारतीय समाज के आधारभूत मूल्यों का समृद्ध विवेचन किया गया है। यहां कुछ महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों का वर्णन किया जा रहा है :

1. **अहिंसा :** यह मूल्य विवेकपूर्ण और शांतिपूर्ण आचरण की भावना को प्रोत्साहित करता है। अहिंसा का स्वरूप है सभी जीवों के प्रति दया और सहानुभूति के साथ रहना।
2. **सत्य :** सत्य का पालन करना यह शिक्षा देता है कि व्यक्ति और समुदाय को धोखा नहीं देना चाहिए और हमेशा सच्चाई का पालन करना चाहिए।
3. **न्याय :** न्याय का स्वरूप है समाज में सबको उचित और समान अवसर प्रदान करना। यह समाज में न्यायपूर्ण और संरचित व्यवस्था की आवश्यकता को समझाता है।
4. **दया :** दया का स्वरूप है दूसरों के दुःखों में सहानुभूति रखना और उनकी मदद करना।
5. **करुणा** : करुणा मूल्य का स्वरूप है स्वयं को दूसरों की कठिनाइयों में समर्थ बनाने का इरादा रखना।
6. **सहानुभूति :** सहानुभूति मूल्य व्यक्ति को दूसरों की भावनाओं और अनुभवों के साथ सहानुभूति करने की क्षमता प्रदान करता है।
7. **समरसता :** समरसता का स्वरूप है समाज में सामंजस्य और शांति की भावना को बनाए रखना। यह समृद्ध, अनुष्ठान और समाज में सुरक्षित एवं संरचित वातावरण का निर्माण करता है।
8. **सामंजस्य** : सामंजस्य का स्वरूप है समृद्ध और एकता के साथ रहना, भलाइयों के साथ मिलजुल करना और समृद्ध भविष्य की दिशा में साथियों के साथ काम करना।

सिंधु सभ्यता के मानवीय मूल्य : सिंधु सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता एक प्राचीन सभ्यता थी जो विशेषकर भारत के पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में स्थित थी और लगभग 3100 ईसा पूर्व से 2500 ईसा पूर्व तक थी।[2] सिंधु सभ्यता के अवशेष पाकिस्तान, भारत और अफगानिस्तान के कुछ हिस्सों में मिले हैं। मानवीय मूल्यों की चर्चा करते समय, सिंधु सभ्यता के अवशेषों में कुछ महत्वपूर्ण तत्व देखे जा सकते हैं। सिंधु सभ्यता के स्थानों पर विकसित नगरीय संरचनाएँ

दिखाती हैं।[3] जो उस समय की उन्नत सभ्यता की प्रतीक थीं। इन संरचनाओं में शहरों के नियमित और सुरक्षित रूप से बनाए गए घरों का प्रसार होता था। अधिकांश शोधकर्ताओं का मानना है कि सिंधु सभ्यता में समाज में समानता और सामंजस्य की प्रवृत्ति थी। सोने और चांदी के आभूषणों, भाषा के अवशेषों और रंगीन गोदान के पट्टों में पाए जाने वाले सामाजिक विभाजनों से सुझाव मिलते हैं।

सिंधु सभ्यता के अवशेषों में धार्मिक प्रथाएँ दिखाई गई हैं। यहां ताम्र पत्रों और अन्य धार्मिक चिन्हों के अवशेष मिले हैं, जो धार्मिक अभ्यंतरण की संभावना हो सकती है। सिंधु सभ्यता के स्थानों पर बागबानी और सिंधु नदी के सदियों तक चलने वाले जल संवर्धन तंत्रों के सबूत मिले हैं, जिससे यह साबित होता है कि लोगों ने अपने पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए प्रयास किया था। इस प्रकार सिंधु सभ्यता में मानवीय मूल्यों का विकास सामाजिक संरचना, सामाजिक समानता, और वातावरण संरक्षण के माध्यम से हुआ था, जो इस समय की सभ्यता की उच्चतम विशेषताओं में से थे।[4]

वैदिक युग के मानवीय मूल्य : वैदिक युग, जिसे वेदों के समय के रूप में भी जाना जाता है, भारतीय सभ्यता का एक महत्वपूर्ण अध्याय था। इस युग में मानवीय मूल्यों का विकास सोच-समझ के साथ विचारशीलता, धार्मिकता, समाजशास्त्र, और कला के माध्यम से हुआ। आर्यों के भारत में बसने के बाद उन्होंने वेदों की रचना की। फिर वेदों पर आधारित वैदिक साहित्य की रचना हुई। इन्हें वेदांग कहा जाता है। इसी साहित्य में आर्य के धार्मिक दर्शन, विचार और मानवीय मूल्य दिखाई देते है। वैदिक साहित्य, विशेषकर ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, भारतीय समाज में धार्मिक और नैतिक मूल्यों की महत्वपूर्ण स्रोत थे। वेदों में शिक्षाएं, उपदेश और नैतिकता से जुड़े अनेक मंत्र मिलते हैं जो मानवीय जीवन को शांति, समृद्धि और एकता की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। समाज के सभी व्यक्ति सद्भाव, समृद्धी और सुखपूर्वक जीवन यापान कर सकें इसलिए वेद, शास्त्र एवं संहिताएं बनीं। हमारी वेद वाणी सर्वे भवन्तु सुखिनः[5] का उद्देश ही है सभी प्राणी सुखी एवं स्वस्थ हों तथा सबका कल्याण हो।

वेदों की उदात्त भावनाएं, आचरण संबंधी नियम, जीवों पर दया, विश्व कुटुंब की और विश्व शांती की मानव कल्याणकारी भावनाएं, सत्य आशावाद आदि विचार वेदों में है जो मानव को एक उच्च जीवन जीने की ओर प्रेरित करती है। वैदिक साहित्य में मानवीय और धार्मिक सिद्धांतों का उद्दीपन हुआ, जिसमें कर्म, ध्यान, भक्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपायों का विवेचन किया गया। यह सिद्धांत लोगों को नैतिकता, समर्थन और सामाजिक न्याय के मूल्यों का पालन

करने के लिए प्रेरित करते थे।[6] वैदिक युग में गुरुकुल प्रणाली का प्रसार हुआ, जिससे युवा शिष्यों को नैतिक शिक्षा, विज्ञान, कला और धर्म की शिक्षा मिलती थी। वैदिक समय में योग और अयुर्वेद जैसी प्राचीन विज्ञानों का महत्वपूर्ण योगदान हुआ। योग ने मानव शरीर, मन और आत्मा के संतुलन को बनाए रखने के लिए विशेष तकनीकों का अध्ययन किया, जबकि अयुर्वेद ने जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक उपचारों का प्रचार-प्रसार किया। वैदिक साहित्यकारों ने नृत्य, संगीत, कला और साहित्य में अद्वितीय कला का सृष्टि किया। इससे समृद्धि और समर्थन के मूल्यों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार वैदिक युग में मानवीय मूल्यों का विकास एक समृद्ध और सामर्थ्य युग की शुरुआत की गई, जिसने भारतीय समाज को एक सृष्टिशील और समृद्धि की।

बौद्ध युग के मानवीय मूल्य : बौद्ध और जैन युग भारतीय समाज के इतिहास में महत्वपूर्ण धार्मिक धारणाए हैं, जिनमें मानवीय मूल्यों का विकास एक महत्वपूर्ण आँकड़ा है। इन युगों में धार्मिक और दार्शनिक आदान-प्रदान ने समाज में नैतिकता, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में गहरा प्रभाव डाला। गौतम बुद्ध के कहे गए विचार लोगों की स्मृति में न रह जाएं इसलिए यहां के विद्वान भिक्षुओं ने सामूहिक रूप से उक्त विचारों को पुस्तकों में लिख दिया ताकि वे लोगों की स्मृति में रहें। पालीभाषा में लिखे गौतम बुद्ध द्वारा सिखाए गए चार आर्य सत्य, अष्टांग मार्ग यह बौद्ध दर्शन हमें बौद्ध विचार में मानवीय मूल्यों का बोध कराता है।[7] बौद्ध काल में विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने वाले दर्शनशास्त्र की नींव मानवीय मूल्यों पर आधारित थी। उन सिद्धांतों को इस प्रकार कहा जा सकता है। बौद्ध धर्म ने अहिंसा का प्रोत्साहन किया और समर्थन की भावना को महत्वपूर्ण बनाया। बौद्ध साहित्य ने जीवन में सहानुभूति और सहयोग की बात की। बौद्ध युग में शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया और ध्यान और विचार के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति का प्रोत्साहन किया गया। बौद्ध धर्म ने सामाजिक न्याय और समाज में समरसता के मूल्यों को प्रोत्साहित किया, जिससे समाज में अधिक समर्थन बढ़ा।

जैन युग के मानवीय मूल्य : प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन धर्म का भी उदय हुआ। जैन धर्म में भी धर्म दर्शन का प्रचार वर्धमान महावीर के माध्यम से हुआ। इस प्रतिबिंब के माध्यम से मानवीय मूल्यों को भी देखा जाता है। जैन धर्म ने अहिंसा और अपरिग्रह को महत्वपूर्ण माना, जिससे लोगों को अपने आचरण और जीवन शैली में सावधानी बरतने की प्रेरणा मिली।[8] जैन युग में ज्ञान और विचार शीलता को महत्वपूर्ण बनाया गया और लोगों को अध्ययन और ध्यान के माध्यम से आत्मा का महत्व समझाया गया। जैन धर्म ने शिक्षा को महत्वपूर्ण

बनाया और अध्ययन के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति को प्रोत्साहित किया। जैन धर्म ने समरसता और समाजशास्त्र को महत्वपूर्ण बनाया और लोगों को समृद्धि और समर्थन के मूल्यों का समर्थन किया।

प्राचीन भारत में मानवीय मूल्यों का विकास एक गहरी सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया थी, जिसने समृद्धि और समृद्धि की ओर बढ़ने में मदद की। इस समय के लोगों ने विचारशीलता, धार्मिकता, आदर्शों का पालन, सामाजिक न्याय और शिक्षा के माध्यम से अपने जीवन को आदर्शवादी बनाने का प्रयास किया। वह मूल्य निम्नलिखित है।

1. **धार्मिकता :** प्राचीन भारतीय समाज में धार्मिकता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। वेद, उपनिषद, और पुराणों में विभिन्न धार्मिक सिद्धांतों ने जीवन को एक उच्च उद्देश्य की दिशा में प्रेरित किया। ध्यान, तप, और सेवा के माध्यम से अच्छे और ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने का प्रमोट किया गया।
2. **शिक्षा :** शिक्षा प्राचीन भारत में महत्वपूर्ण थी और यह सभी वर्गों के लिए उपलब्ध थी। गुरुकुल सिस्टम ने छात्रों को जीवन के विभिन्न पहलुओं में प्रशिक्षित किया, जिससे वे समाज में उपयोगी नागरिक बन सकते थे।
3. **परंपरागत जीवनशैली** : प्राचीन भारतीय समाज में परंपरागत जीवनशैली ने मानवीय मूल्यों को मजबूत किया। परिवार, समुदाय, और समाज में संबंधों को महत्व दिया गया और लोगों को इन संबंधों का समृद्धि से देखा गया।
4. **आदर्शों का पालन :** भारतीय समाज में आदर्शों का पालन करना एक महत्वपूर्ण मूल्य था। धर्मिक ग्रंथों और महापुरुषों के उदाहरणों से प्रेरित होकर लोग नैतिकता और ईमानदारी के मानकों का पालन करते थे।
5. **सामाजिक न्याय :** समाज में न्याय की प्राथमिकता दी जाती थी, और विभिन्न वर्णों और जातियों के बीच सामंजस्य बनाए रखने के लिए प्रयास किया गया।

प्राचीन भारत में ये मूल्य समृद्धि की दिशा में बढ़ने में मदद करते थे।

इन मूल्यों का पालन करने से समाज में एक सही और स्थिर निरंतरता बनी रहती थी जो समृद्धि और शांति की दिशा में अग्रसर हो सकती थी।

सारांश : प्राचीन भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों का समर्थन और पालन समृद्धि और समरसता की दिशा में किया गया। इस युग में मानवीय मूल्यों का विकास एक उदार और आध्यात्मिक समृद्धि के साथ हुआ। धार्मिक और दार्शनिक साहित्य, जैसे कि वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण, आदि ने मानव जीवन को नैतिकता, सहानुभूति और आत्मा के प्रति समर्पित करने की उपदेशों से भरा किया। यहां धर्म, नैतिकता और आत्मा के प्रति समर्पण की भावना ने एक समृद्ध

और उदार समाज की रचना की। इसके परिणामस्वरूप, प्राचीन भारतीय संस्कृति और धार्मिकता ने दुनियाभर में एक अद्वितीय और अग्रणी स्थान बनाया, जिसमें मानवीय मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मानवीय मूल्य व्यक्ति को नैतिक मार्गदर्शन में सहारा प्रदान करते थे। ये मूल्य सत्य, न्याय, दया, करुणा और ईमानदारी की प्रेरणा प्रदान करते थे, जो उच्च नैतिकता और यथार्थ की ओर बढ़ने में मदद करते थे। मानवीय मूल्य व्यक्ति को अपने समाज में सामाजिक समरसता, सहानुभूति और समर्थन की भावना से भरा रखते थे। इससे उसे साथीपूर्ण और सहायक रिश्तों का आनंद लेने में मदद मिलती थी। इन सभी कारणों से मानवीय मूल्यों का पालन व्यक्ति को सशक्त, सकारात्मक और सहायक बनाता है, जो उसे अपने और अपने समाज के लिए सतत समृद्धि और सुख की दिशा में बढ़ने में मदद करता है। इस प्रकार सिंधु सभ्यता, वैदिक युग तथा बौद्ध एवं जैन युग में विविध मानवी मूल्य का विकास होता और उनका समाज पर उचित प्रभाव दिखाई देता है।

इस प्रकार, मानवीय मूल्यों का प्राचीन भारत में मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था और आज भी है, जो समृद्ध, संतुलित और समर्थ समाज की दिशा में मार्गदर्शन करता है। ये मूल्य व्यक्ति को नैतिकता, सहानुभूति और सजीव समर्थन की भावना से युक्त करके उच्च और आदर्श जीवन जीने का मार्ग दिखाते हैं। आज के भारतीय जीवन में जो मानवी मूल्यों का ह्रास हो रहा है वह बहुत ही शोचनीय एवं दुखद घटना है। मानवी मुल्यों के प्रतिष्ठा के बिना हम कदापि प्रगती के मंजिल पर अग्रसर नहीं हो सकते। हमे राष्ट्र तथा समाज के उन्नति के लिये मानवी मुल्यों को सर्वोपरि स्थान देना होगा। तभी हम प्रगति के मंजिल पर अबोध गती से आगे बढ़ सकते हैं।

संदर्भ

1. मराठी विश्वकोश मूल्य शिक्षण, www-marathivishwkosh-org, Date- 14/12/2023
2. डॉ. रा.श्री. मोरवंचीकर, डॉ. श्रीनिवास सातभाई, प्राचीन भारताचा इतिहास, विद्या बुक्स पब्लीशर्स, औरंगाबाद, 2023, पृ. 50
3. डॉ. रा.श्री. मोरवंचीकर, डॉ. श्रीनिवास सातभाई, प्राचीन भारताचा इतिहास, विद्या बुक्स पब्लीशर्स, औरंगाबाद, 2023, पृ. 56
4. पी.जी. जोशी, प्राचीन भारताचा सांस्कृतिक इतिहास, विद्या प्रकाशन, नागपुर, प्रथम आवृत्ती, 2003, पृ. 37
5. वंदना सिंह, वैदिक साहित्य में वर्णीत मानवीय मुल्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता सभी www-socialresearchfoundation-com 15/12/2023

6. डॉ. रा.श्री. मोरवंचीकर, डॉ. श्रीनिवास सातभाई, प्राचीन भारताचा इतिहास, विद्या बुक्स पब्लीशर्स, औरंगाबाद, 2023, पृ. 111
7. प्रा. डॉ. पूनम अभ्यंकर, पाली साहित्यातील मानवी मूल्य, www-navjyotnet 15/12/2023
8. पी. जी. जोशी, प्राचीन भारताचा सांस्कृतिक इतिहास, विद्या प्रकाशन, नागपुर, प्रथम आवृत्ती, 2003, पृ. 357

15. जीवन में मानवीय मूल्यों का महत्व

डॉ. सोमनाथ गुंजकर
इतिहास विभाग
श्री गुरु बुद्धिस्वामी महाविद्यालय पूर्णा

मानव मूल्य एक धारणा है जिस का संबंध मानव से है। मानव मूल्यों को ही मानव व्यवहार एवं समाज कल्याण की कसौटी माना जाता है। इन मानव मूल्यों की स्थापना मानव जीवन के विविध पक्षों का मानव व्यवहार नामक व्यापक वर्ग का एक अंग है। मानव मूल्य मानव की सृजनात्मक प्रवृत्ति पर आधारित होते हैं। मानव मूल्य कहीं से अचानक टपक नहीं पड़ते बल्कि वे अपने सामाजिक, आर्थिक परिवेश और समाज से उपजे हैं, ''हम सभी वस्तुओं को मानव से अलग करके उन पर विचार नहीं कर सकते वरना, मानव जीवन व व्यवहार के संदर्भ में ही प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन करते हैं।'' मानव मूल्य बाह्यारोपित वस्तु न होकर जीवन के संदर्भ में विकसित होते हैं। मानव मूल्य स्वतंत्रता और समानता का प्रतिपादन करते हैं तथा एकता, समन्वय, सामंजस्य और संतुलन को बनाए रखते हैं।[1]

नैतिक मूल्य : नैतिकता मनुष्य के सम्यक जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में मानव का सामूहिक जीवन कठिन हो जाता है। नैतिकता से उत्पन्न नैतिक मूल्य मानव की ही विशेषता है। नैतिक मूल्य ही व्यक्ति को मानव होने की श्रेणी प्रदान करते हैं। इनके आधार पर ही मनुष्य सामाजिक जानवर से ऊपर उठकर नैतिक अथवा मानवीय प्राणी कहलाता है। अच्छा-बुरा, सही गलत के मापदण्ड पर ही व्यक्ति, वस्तु, व्यवहार व घटना की परख की जाती है। ये मानदंड ही मूल्य कहलाते हैं और भारतीय परम्परा में ये मूल्य ही धर्म कहलाता है अर्थात 'धर्म' उन शाश्वत मूल्यों का नाम है जिनकी मन, वचन, कर्म की सत्य अभिव्यक्ति से ही मनुष्य मनुष्य कहलाता है अन्यथा उसमें और पशु में भला क्या अंतर? धर्म का अभिप्राय है मानवोचित आचरण संहिता। यह आचरण संहिता ही नैतिकता है और इस नैतिकता के मापदंड ही नैतिक मूल्य हैं। नैतिक मूल्यों के

अभाव में कोई भी व्यक्ति, समाज या देश निश्चित रूप से पतनोन्मुख हो जायेगा। नैतिक मूल्य मनुष्य के विवेक में स्थित, आंतरिक व अंतः स्फूत तत्त्व हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में आधार का कार्य करते हैं, किसी का दृष्टिकोण ही व्यक्ति की गुणवत्ता तय करता है। मानवीय मूल्यों को सीखने से व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण और व्यवहार को समझता है। यह आपको अपने काम को प्रबंधित करने और सही तरीके से प्रगति करने के लिए कुछ प्रेरणा प्राप्त करने में मदद करता है। मानवीय मूल्य हमारे आसपास की दुनिया के बारे में हमारी धारणा को बताने में मदद करते हैं।

मानवीय मूल्यों को सीखकर आप जान सकते हैं कि कौन सा सही है और कौन सा गलत है मानवीय मूल्यों को सीखने से एक व्यक्ति अन्य मनुष्यों के साथ-साथ अपने संगठन को भी समझता है मानवीय मूल्य व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग हैं।

एक वफादार इंसान होना भी सर्वोत्तम मानवीय मूल्य माना जाता है मदद करना भी एक महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य माना जाता है। किसी व्यक्ति की सही समय पर मदद करना बहुत जरूरी है। आप जो चाहते हैं उसकी स्पष्टता रखना आपका सबसे बड़ा मूल्य है जो आपको एक मजबूत नींव बनाने में मदद करता है यदि आप सभी मानवीय मूल्यों का पालन करेंगे तो आपको आत्म-सम्मान प्राप्त होगा यदि आप में आत्म-सम्मान है तो ही दूसरे आपका सम्मान करेंगे मानवीय मूल्य यह जानने में मदद करते हैं कि आप अपने जीवन में क्या चाहते हैं। मानवीय मूल्य महत्वपूर्ण समय में निर्णय लेने में मदद करते हैं। मानवीय मूल्य व्यक्ति को अपने जीवन का बेहतर तरीके से आनंद लेने में मदद करते हैं।[2]

आत्म-सम्मान : शिक्षा निति में शिक्षा राष्ट्रीय आत्मनिर्भता की अन्तिम गारन्टी माना गया है यह भी कहा गया है कि यह संवेदनशीलताओं तथा प्रत्यक्षीकरण का प्रतिकार करती है जो राष्ट्रीय समभाव वैज्ञानिक स्वभाव मन व आत्मा की स्वतन्त्रता को सम्भव वनाते हैं तथा इस प्रकार सविंधान में निहित समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातन्त्र के लक्ष्यों की प्राप्ति आसान हो जाती है शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय ढाँचे पर आधारित होगी तथा भारत की उभयनिष्ठ धरोहर, प्रजातन्त्र समतावादिता व धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों भिन्न-भिन्न लिंगों के लोगों में समानता, पर्यावरण की रक्षा, छोटे परिवार के मानक स्वीकरण तथा वैज्ञानिक स्वभाव के विकास को बढ़ावा मिल सके। शिक्षा नीति में विज्ञान शिक्षा के माध्यम से बच्चों में पृच्छा वस्तुनिष्ठता, जिज्ञासा, सौन्दर्यात्मक संवेदनशीलता व वैज्ञानिक स्वभाव को विकसित करने की बात पर बल दिया गया है। शिक्षा नीति की

कार्ययोजना में धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक तथा नैतिक व मानवीय मूल्यों व समाज सेवा, श्रम के प्रति आदर, छोटे परिवार के मानक में आस्था, वातावरण संरक्षण संस्कृति बोध तथा राष्ट्रीय एकता जैसे मूल्यों विकास पर बल देने की अनुशंसा की गई है।[3]

दृष्टिकोण : मानवीय मूल्यों को सीखने से व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण और व्यवहार को समझता है। यह आपको अपने काम को प्रबंधित करने और सही तरीके से प्रगति करने के लिए कुछ प्रेरणा प्राप्त करने में मदद करता है। मानवीय मूल्य हमारे आसपास की दुनिया के बारे में हमारी धारणा को बताने में मदद करते हैं। मानवीय मूल्यों को सीखकर आप जान सकते हैं कि कौन सा सही है और कौन सा गलत है। मानवीय मूल्यों को सीखने से एक व्यक्ति अन्य मनुष्यों के साथ-साथ अपने संगठन को भी समझता है मानवीय मूल्य व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग हैं एक वफादार इंसान होना भी सर्वोत्तम मानवीय मूल्य माना जाता है। मदद करना भी एक महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य माना जाता है। किसी व्यक्ति की सही समय पर मदद करना बहुत जरूरी है। आप जो चाहते हैं उसकी स्पष्टता रखना आपका सबसे बड़ा मूल्य है जो आपको एक मजबूत नींव बनाने में मदद करता है यदि आप सभी मानवीय मूल्यों का पालन करेंगे तो आपको आत्म-सम्मान प्राप्त होगा यदि आपमें आत्म-सम्मान है तो ही दूसरे आपका सम्मान करेंगे। मानवीय मूल्य यह जानने में मदद करते हैं कि आप अपने जीवन में क्या चाहते हैं। मानवीय मूल्य महत्वपूर्ण समय में निर्णय लेने में मदद करते हैं। मानवीय मूल्य व्यक्ति को अपने जीवन का बेहतर तरीके से आनंद लेने में मदद करते हैं।[4]

सामाजिक मूल्यों का अर्थ : मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यह समाज में रहता है। यह समाज ही है जो उसे सभ्य बनाता है। जो कुछ वह सोचता है। वह लगभग समाज से ही सीखता है। केवल सीखने की क्षमता उसकी अपनी होती है। समाज में ही उसकी आत्मचेतना जागती है और वह अपने को 'मानव' समझने लगता है। वह परहित में रुचि लेने लगता है। परहित का अर्थ है दूसरों की भलाई के लिये अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान कर देना।

समाज जीवन को सुरक्षित, सुविधाजनक एवं सभ्य बनाने के लिये सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है। क्योंकि मनुष्य समूहों में रहता है इसलिए उसे किसी आचार संहिता का पालन करना पड़ता है ताकि सभी शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। उदाहरण स्वरुप-चोरी मत करो एक महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्य है। 'सदा सत्य बोलो' एक और सामाजिक मूल्य है। कुछ सामाजिक मूल्यों का उल्लेख नीचे किया जाता है। सामाजिक संवेदना, परोपकार, सहनशीलता, सामाजिक समायोजन,

सामाजिक वफादारी, सामाजिक न्याय सामाजिक मूल्य के सामाजिक मानदण्ड, लक्ष्य या आदर्श है जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन के अन्तःसंबंधों को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। हम कह सकते हैं कि सामाजिक मूल्य वे उपकरण तथा प्रतीक होते हैं जिनका मनुष्य ने आविष्कार किया है और जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। सत्य, सुन्दरता, अच्छाई, उपयोगिता आदि से संबंधित मूल्य इसी श्रेणी में आते हैं।[5]

शिक्षा का महत्व : शिक्षा के माध्यम से केवल भौतिक संपन्नता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता, शिक्षा द्वारा हम एक अच्छे इंसान और बेहतर नागरिक भी बनने चाहिए। इसके लिए अपनी परंपरा, आदर्शों व जीवन मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। मानसिक विकास के बिना भौतिक विकास सार्थक नहीं हो सकता है। परंपरागत मूल्यों को आवश्यक संशोधन के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। परंपरा के साथ नवीन ज्ञान-विज्ञान का समावेश शिक्षा को प्रभावपूर्ण बना सकता है।

शिक्षा व्यक्ति के मानसिक व बौद्धिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन होता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को कुसंस्कारों व मानसिक गुलामी से बचाया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नई चेतना व जोश पैदा कर सामाजिक विकृतियों, अंधविश्वासों, गैर बराबरी की स्थितियों, क्रूरता व शोषण के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है। आज नई पीढ़ी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नित नई उपलब्धियां प्राप्त कर रही है। अनेक भौतिक उपलब्धियां प्राप्त कर अंतरिक्ष में मनुष्य भेजने की तैयारियां चल रही हैं। मनुष्य ने शिक्षा से असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं, लेकिन आज हम शिक्षा में ऐसी कमी अनुभव करते हैं, जिसका निदान आवश्यक है।[6] इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान शिक्षा से हमने असंख्य भौतिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं, लेकिन वर्तमान संदर्भ में शिक्षा मानवीय मूल्यों, परंपरा व आदर्शों की उपेक्षा कर एकांगी व संवेदनहीन होती जा रही है। हर व्यक्ति के जीवन में नैतिकता का बहुत महत्व होता है। हमारे जीवन का हर हिस्सा नैतिक मूल्यों से जुड़ा होता है। इससे हमें वस्तुगत ज्ञान प्राप्त होता है। इस शिक्षा से व्यक्ति समाज में आदरणीय बनता है। हमारे समाज और देश में नैतिक मूल्यों को सबसे ज्यादा महत्व दिया जाता है।

राष्ट्र की भौतिक दशा सुधारने के लिए तो जीवन मूल्यों का उपयोग करके उन्नति की सही राह चुन सकते हैं। जिससे लोगों के बीच फैल रहे भ्रष्टाचार का विकास रुक जाए और हर व्यक्ति ईमानदारी से काम करे।[7]

समाज में मूल्यों का महत्व : समाज में मूल्यों का ह्रास होने से हर प्रकार के अपराध दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं, जिसकी वजह से मूल्यविहीन समाज में असंतोष फैल रहा है और वातावरण खराब हो रहा है। असंतोष बढ़ने से युवक अपराध की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जिससे समाज के समक्ष चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। ज्यादातर लोग निकम्मेपन और भ्रष्टाचार के अंधकूप में डूब रहे हैं और उन्हें समाज या देश की कोई परवाह नहीं है। ऐसी बिकट परिस्थितियों में आत्ममंथन करना जरूरी है। सांस्कृतिक मूल्य हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित करते हैं, जिसमें हम दूसरों के कार्यों की व्याख्या कैसे करते हैं और हम किसे प्राथमिकता के रूप में देखते हैं, यह भी शामिल है। वैश्विक गतिशीलता की तेज गति और चल रहे क्षेत्रीय संघर्षों के कारण, अधिकांश कार्य वातावरण अब सांस्कृतिक रूप से सजातीय नहीं रह गए हैं। जो लोग अक्सर एक साथ काम करते हैं उनका बहुत अलग सांस्कृतिक संदर्भों में समाजीकरण किया गया है।[8] सांस्कृतिक मूल्य आयाम आपको संस्कृति को समझने और संस्कृति की समझ बनाने में सक्षम होने में मदद करते हैं। ये आयाम आपको अपने लिए संस्कृति का एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं और साथ ही यह भी परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं कि दूसरे लोग उनकी संस्कृति को कैसे देखते हैं। सभी संस्कृतियाँ विभिन्न तरीकों से अंतर के इन आयामों का अनुभव करती हैं और विभिन्न संस्कृतियाँ इन मतभेदों को कई तरीकों से हल करती हैं। इन अवधारणाओं से अवगत होने से आपको अपनी संस्कृति के संबंध में अपने अनुभवों का पता लगाने में मदद मिलती है। यह उस अनुभव को कम अस्पष्ट और ख़तरनाक बनाने में मदद करता है। सांस्कृतिक मूल्य आयाम सांस्कृतिक जागरुकता के लिए स्पष्टता और प्रारंभिक स्थान प्रदान करते हैं। हालाँकि, उन्हें अक्सर अमूर्त और जलरेखा के नीचे देखा जाता है, लेकिन एक बार जब आप सांस्कृतिक आयामों के अनुकूल हो जाते हैं, तो आप अधिक सहज हो जाते हैं और सांस्कृतिक अंतर नहीं देखते हैं।[9]

भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति एक विशाल एवं अमूल्य धन है जो दुनिया के सभी देशों में उन्नति के मार्ग का दर्शन कराती है। हमारी संस्कृति न केवल हमारे आस-पास की जगहों को सजाती है बल्कि हमारे स्वभाव और सोच को भी आकार देती है। यह हमारे विचार और व्यवहार में स्थिरता लाती है जिससे हम अपनी स्थिति में संतुष्ट रहते हैं। मूल्य किसी संस्कृति के सारभूत तत्व हैं जो उसकी अभौतिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। मूल्य समाज में लोगों को यह बताते हैं कि उनके लिये क्या उचित और महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समाज में मानव व्यवहार के संचालन, नियंत्रण एवं निर्देशन के लिए कुछ आदर्श एवं लक्ष्य

होते हैं, जिनके प्रति समाज के सभी सदस्य श्रध्दा रखते हैं और उसके अनुकूल अपना व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। ये आदर्श या लक्ष्य एक प्रकार के सामाजिक मानदंड होते हैं जो समाज के सदस्यों को उचित-अनुचित, योग्य-अयोग्य, भला-बुरा, नैतिक-अनैतिक, पाप-पुण्य आदि की व्याख्या करने में सहायक होते हैं। ये सामाजिक मानदंड सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों व क्रियाओं जैसे परिवार, विवाह, जाति वर्ग, धर्म, राजनीति आर्थिक जीवन आदि से सम्बंधित होते हैं। ये मापदंड मनुष्य के ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक तीनों पक्षों से संबंधित कार्यकलापों को वंचित दिशा की ओर निर्देशित करते रहते हैं। इन्हीं सामाजिक मानदंडों को सामाजिक मूल्य कहते हैं।[10]

संदर्भ

1. डॉ. प्रसाद पी. हरिराम, मनव-मूल्य और भारतीय परंपरा, 21 सप्टेंबर, 2017
2. वार्ष्णेय सोनी, नैतिक मूल्य मनुष्यता की पहचान हैं, फरवरी, 2014
3. डॉ. शर्मा शिवदत्त, मानवीय मूल्यों का शिक्षा में महत्व, www.allresearchjournal.com 29.07.2015
4. https://www.cushyvalues.com
5. https://www-worldwidejournals.com
6. https://www-worldwidejournals.com
7. https://parikshapecharcha.com
8. https://www-servicegrowth.com
9. https://saylordotorg-github.io
10. https://www-kailasheducation.com

16. जया जादवानी की कहानियों में मानवीय मूल्य

डॉ. कोल्हे मंजुषा संदिपानराव
इंदिरा गांधी महाविद्यालय सिडको, नांदेड

समकालीन साहित्यकार जया जादवानी वास्तविकता की धरा पर अपनी कलम चलाती हैं। कहानी की विधा में यथार्थता और आधुनिकता को केंद्र में रखकर अपनी कहानियों का सृजन किया है। कहानियों में मानवीय मूल्यों कि लड़ाई में वह अपना पूरा रचना धर्म-लगा देती हैं। आधुनिकता के कारण समाज जीवन पर हो रहे दुष्परिणामों को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। तो वहीं उन परिणामों से किस तरह लड़कर उनका समाधान निकाला जा सकता है इस पर भी विचार करती दिखाई देती हैं। आधुनिकता के कारण हम अपने मानवीय मूल्य द्वारा परिवार की संकल्पना को अत्यंत संकुचित दृष्टि से देखने लगे हैं। जहाँ संपूर्ण विश्व को ही अपना घर परिवार मानने वाली भारतीय संस्कृति यह आज पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता के कारण मानवीय मूल्यों में बदलाव तो आया है। साथ ही परिवार के प्रति स्नेह, प्रेम, आदर जैसी भावना भी खत्म हो गयी है। जहाँ हम मानवीय मूल्य द्वारा परिवार में बड़े बुजुर्ग को प्यार आदर सम्मान देते हैं, वहीं आज उनसे बात करने की फुरसत तक हमारे पास नहीं है। जया जी की कहानी 'चिल मार' यह पिता पुत्र के रिश्ते को लेकर लिखी गयी है। इसमें पिता बेटे से प्रेम करता है और उसे पढ़ा-लिखाकर विदेश भेज देता है ताकि वह उसके बुढ़ापे का सहारा बने एक अच्छा दोस्त बने। पिता-मां आखरी दिनों में बेटे के पास आते हैं तो बेटा माँ बाप से प्रेम तो करता है पर माँ कहती, ''एक दिन में ही भाँप लिया की बच्चे उनसे कितनी दूर चले गये हैं पर कहकर वे खुद को छोटा करना नहीं चाहती। जीवन क्या ऐसा ही है हर बंदा थोड़ी देर आकर तुम्हारे पास बैठता है और चला जाता है पर ये तो अपने बच्चे हैं... नहीं... सब ठीक है... उन्होंने खुद से कहा... वे ख्वाम ख्वाह पजेसिव हो रही हैं।''[1] लेकिन लेखिका को यही कहना है कि आज कल के नवयुवक मानवीय मूल्य को भूल गये हैं और अनजान लोगों

के साथ फेस बुक पर फोन पर घंटों अपने दोस्तों के साथ गप्पे मारता है लेकिन अपने पिताजी से बोलने के लिय समय नहीं है। माँ अपने बेटे को, बहू को एक ही दिन में पहचानती लेती है लेकिन उसका पति नहीं पहचान पाता यही आस लगाये है।

मानवीय मूल्य में परिवार हमारे हैं। जब परिवार सुखी समृद्ध रहेंगे तभी समाज सुखी और समाज नींव समृद्ध होगी। लेकिन आज आधुनिकता के कारण परिवार में समृद्धी तो दिखाई देती है लेकिन रिश्तों में अपानपन सुख नहीं दिखाई देता और छोटी-छोटी बातों से रिश्ते टूट जाते हैं। यही मानवीय मूल्य का दुर्भाग्य है। परिवार के सम्बन्धों के टूट जाने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें दाम्पत्य जीवन में तनाव, प्रेम विवाह, शिक्षा, आर्थिक समस्या आदि जया जादवानी की कहानियों में अधिकतर पारिवारिक जीवन की यथार्थता पर आधारित है। लेखिका के रूप में मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखकर परिवार की समस्याओं की जानकार ही नहीं वो अपितु उन समस्याओं को रूबरू देखती भी हैं। वर्तमान समय में परिवारों में खासकर बुजुर्गों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। यही कारण ''समय बेहिसाब या मगर'' इस कहानी में जया जी ने उनके स्वयं उनके पिताजी के बारे में उनके छोटे भाई किस तरह से व्यवहार करते हैं। यह बताया है कि बंटवारे के समय उनके पिताजी लाहोर छोड़कर भारत आए और रात-दिन एक करके बहुत बड़ा कारोबार खड़ा किया लेकिन आज बेटे उन्हें दुकान तक आने नहीं देते तो भी रोज की आदत से मजबूर और बेटे के प्रेम की वजह से आते हैं तब बेटे कहते हैं, ''नींद आ रही है तो घर जाकर सोइए। उन्होंने चौंक कर देखा, छोटा कह रहा है। वे जब तक खुद से बाहर आकर जवाब दे, यह जा, वे असहाय से उधर देखते रहे किसी को फुरसत नहीं दो घड़ी बातकर ले चाहत भी, नहीं महीनों हो जाते हैं बेटों से बात नहीं होती एकाध वाक्य उछालकर वे चले जाते हैं और वे उसी को ऊन के गोले की तरह लपेटते खोलते रहते हैं। जब-जब सुनने को मिलती है एकध झिड़कियां, कभी तो वे भी भड़क उठते हैं और खूब गालियाँ देते हैं और कभी कछुए की तरह अपने अंदर हो जाते हैं। वे उठते हैं और घर आ जाते हैं। भूख से उनके प्राण निकल रहे हैं। अब जो भी मिलेगा, वे जरूर खा लेंगे। सब ने खाया होगा। किसी से इतना नहीं हुआ कि आकर पूछ ही लें, उनकी आँखें भर आती है। वे कमजोरी महसूस कर रहे हैं। पलंग पर लेट जाते हैं। कोई नहीं आता बुलाने। खाना बनने में देर है शायद। वे उठकर बाहर आते हैं और यूं ही चलना शुर कर देते हैं कहाँ जाएं? किसके द्वार पर जाकर बैठें?''[2] इस तरह से जया जादवानी जी कहती हैं की बाप की कमाई पर बेटों के बड़े होने के बाद कोई

अधिकार नहीं रहता। यहाँ तक कि उन्हें अच्छी चीजें खाने का हक तक छीन लेती है बहु। लेखिका इस कहानी के माध्यम से यही कहना चाहती है कि वर्तमान समय में हर घर में बूढ़े लोगों की परिस्थिति है मनुष्य अपना मानव धर्म भूल गया है बेटा माँ-बाप को बुढ़ापे में संभाल नहीं रहे हैं। लेखिका अपनी कहानी, ''समय बेहिसाब था मगर...'' इस में भी लेखिका एक बूढ़ी औरत के परिस्थिती के बारे में लिखती हैं कि बेटा और बहु दोनों काम की वजह से घर के बाहर रहते हैं आज कल बच्चे विदेश में नौकरी कर रहे हैं यह तो स्टेटस की वजह बन गयी है। बेटा जब विदेश जाकर नौकरी करता है लेकिन अपने माँ बाप को भूल जाता है। बुढ़ापे का सहारा लड़का बने यही उनकी इच्छा रहती है लेकिन लड़का अपने अनपढ़ माँ बाप से बहुत दूर चला जाता है क्योंकि उनकी अनपढ़ देहाती बोली की वजह से उन्हें बोलने नहीं देता तो वह अपने बेटे के साथ फॉरेन में रहती है पती के मरने बाद। पती था तो वह उसके साथ बहुत बोलती थी लेकिन अब वह किसी के साथ बोल नहीं सकती तो लेखिका उस बूढ़ी औरत की तकलीफ बयान करती है इस तरह कि, ''कई बार वे ड्राइंग रुम या लॉन में सिर्फ यही देखने देर तक बैठी रहती कि जाते हुए बेटे और बहू के चेहरों को निहारा जा सके या उनकी कोई आपसी बातचीत सुनी जा सके पर इससे भी कुछ नहीं हुआ। वे जान ही नहीं पाती कि वे आपस में कब बात करते हैं? एक बार तो वे साहस कर जल्दी-जल्दी नाश्ता कर रहे बेटे के पास जा बैठी और उसके सामने रखे एप्पल को छीलने के लिए चाकू उठाया। बेटे ने आहिस्ता से चाकू उनके हाथ से लेते हुए पूछा-'ऑल वेल?' वे सिर 'न' में हिला सकी न 'हाँ' में। नीड एनीथिंग?' उसकी आँखें सामने रखी बड़ी-सी मोबाइल के स्क्रीन पर है। काश! वे स्क्रीन ही होतीं। 'आय नीड यू...' वे बहुत जोर से कहना चाहती थी पर उनका बूढ़ा जिस्म काँपकर रह गया। खुश होना चाहिए था उन्हें कि जाने कितने दिनों बाद उन्होंने अपने बेटे की आवाज सुनी थी''[3] इस तरह से आज हर घर में बेटा-बहु पोते होकर भी उसे अपने बेटे को भी बोल नहीं पा रही थी इतना डरती है क्योंकि वह गाँव की देहाती बोली उसके बच्चे बिगाड़ न सके इस वजह से उसे घर में कोई बोलने नहीं देता था। पति था तब उसके साथ वार्तालाब करती थी। अब एकदम चुपचाप कमरे में बैठती हैं। परिवार में रहकर भी अकेली जिंदगी जी रही हैं। आज के युग की बहुत बड़ी बूढ़े लोगों की समस्या बन गयी है। मानवीय मूल्य ही कम हो रहा है जीते जी उन्हें घुटन भरी जिंदगी जीनी पड़ रही है लेखिका की कहानी ''सूखे पत्तों का शोर'' इसमें भी बूढ़े बाप का करुण चित्रण हुआ है। जो अपने बेटी को कहता है की जवानी में रात-दिन एक करके कमाया ताकी बूढ़ापे में काम आयगा लेकिन आज बेटे से पैसे

मांगने पड़ते हैं बेटी से बेटों के बारे में कहता कि, ''तूझसे कह चुका हूं कि एक हजार भी माँगता हूं तो पूछते हैं-क्या करोगे? उस दिन चप्पल खरीद कर लाया तो बोले डेढ़ सौ की चप्पल? मैंने चप्पल वापस कर दी। मेरी औकात नहीं हैं। डेढ़ सौ की चप्पल पहनने की तुम पहनो। मैं तो गरीब हूँ। एक करोड़ की प्रापर्टी है बब्बी मेरी... और मुझे एक हजार का हिसाब देना पड़ता है। मैंने लिया कभी किसी से हिसाब...। सब कुछ खुला पड़ा था... जिसकी जितनी मर्जी हो, ले जाओ। तू कुछ बोल न, चुप क्यूँ है उनका चेहरा लाल होता जा रहा है।''[4] इस तरह से जया जादवानी अपने परिवार में मानवीय मूल्य का पतन हो रहा है अपनी कहानी के माध्यम से बताती हैं।

संदर्भ

1. चिल मार (अनकहा आख्यान कहानी संग्रह), जया जादवानी, पृ. 84
2. शाम की धूप में (वहाँ मैं हूँ कहानी संग्रह) जया जादवानी, पृ. 14
3. समय बेहिसाब था मगर... (अनकहा आख्यान कहानी संग्रह) जया जादवानी, पृ. 34
4. सूखे पत्तों का शोर (उससे पूछो कहानी संग्रह), जया जादवानी, पृ. 128

17. प्रेमाश्रम उपन्यास में स्त्रियों का मानवीय मूल्य

डॉ. विद्या किशनराव सावते
यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़

किसी भी भाषा का साहित्य अपने समय का दर्पण होता है। साहित्य के माध्यम से हमें तत्कालीन परिस्थितियों के बारे में पता चलता है। प्रत्येक रचनाकार के साहित्य में अपने समय की अनुभूति होती है। समय या काल कोई भी हो मानवीय मूल्य तो हर समय होते हैं। हिंदी साहित्य में मानवीय मूल्यों का जब अध्ययन करते हैं तो हमें मूल्यों का अर्थ ज्ञात होना भी जरूरी होता है वैसे तो सामान्य भाषा में मूल्य का अर्थ कीमत होता है लैटिन भाषा के शब्द वैलेरीय शब्द से अंग्रेजी शब्द वैल्यू बना है इसका हिंदी रूपांतरण मूल्य है।

मूल्य शब्द की परिभाषा हम कुछ इस तरह लेकर कर सकते हैं। व्यक्ति का ऐसा गुण जिसके कारण वह महत्वपूर्ण सम्मानीय एवं उपयोग साबित हो यहां कौन आंतरिक एवं बाहरी दोनों प्रकार का होता है इसके अतिरिक्त मूल्य शब्द का दार्शनिक एवं शैक्षिक अर्थ भी है। शास्त्र में मूल्य एक शुद्ध सूक्ष्म तत्व मूल्य ऐसी वस्तु का निर्माण करता है जो कि सामाजिक एवं आर्थिक रूप से लाभप्रद कहीं जा सके संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मूल्य से तात्पर्य उन सभी विचारों से जिन्हें हम पसंद करते हैं जो पुरस्कृत एवं प्रशंसनीय होते हैं। जो पुरस्कृत एवं सम्माननीय होते हैं अपेक्षित आनंद तथा संतोष देने वाले होते हैं। जिनमें व्यक्ति समय सीमा नहीं होती इस प्रकार मूल्य हमारे प्रेरणात्मक पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रेमचंद की स्त्री दृष्टि : प्रेमचंद का युग नारी आंदोलन का युग भी था उनके समय में पुनर्जागरण का राष्ट्रव्यापी आंदोलन के फलस्वरूप ही कई अमानुष कुरीतियों पर वैधानिक प्रतिबंध लगाना संभव हुआ। सन 18 सो 29 में सती प्रथा निषेध कानून बनाया गया बाल विवाह निषेध शारदा अधिनियम 1929 में पारित हुआ। जिसके अनुसार विवाह के समय करने की उम्र 14 और वर की आयु 18 चाहिए तलाक का प्रस्ताव सर्वप्रथम भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक परिषद द्वारा 1924

में लाया गया जिसका तीव्र विरोध हुआ था। विधवा विवाह के पक्ष में समाज सुधारक बराबर कार्य कर रहे थे। हर ईश्वरचंद्र विद्यासागर केशवचंद्र सेन ज्योतिबा फुले और दयानंद सरस्वती ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। औरतों के शिक्षा का भी अधिक प्रचार हुआ आजादी की लड़ाई में स्त्रियों का भी बराबरी का साथ था। स्वयं प्रेमचंद की धर्मपत्नी शिवरानी देवी पिकेटिंग करते हुए गिरफ्तार हुई थी। नारी की तत्कालीन दशा से प्रेमचंद संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने सिर्फ कथा साहित्य के माध्यम से ही नहीं अपने लेखों और संपादकीय टिप्पणियों में भी स्त्री की स्वतंत्रता और अधिकारों का लगातार समर्थन किया। प्रेमचंद के कथा साहित्य में हमें हर वर्ग जाति और धर्म की स्त्री का चित्रण मिलता है। औरतों को जिस दोहोरी शोषण का शिकार होना पड़ रहा था। प्रेमचंद्र से भली-भांति परिचित थे। शरदचंद्र की तरह प्रेमचंद की संपूर्ण सहानुभूति और स्त्रियों के साथी शरद की तरह प्रेमचंद भी मानते थे कि कमजोर कही जाने वाली स्त्रियों में भी मानवीय गरिमा का भाव अवश्य होता है। आवश्यकता उसके प्रस्फुटन की है। शरद की नायिका सहनशील करुणामई है लेकिन उनके सारे गुणों का सामाजिक धरातल उक्त है। इसके विपरीत प्रेमचंद की सभी असली पात्र कहीं अधिक सक्रिय संघर्षशील और सचेत है। इसलिए अधिक विश्वसनीय लगती है उनके जीवन की समस्याएं केवल उनकी नहीं है वे तत्कालीन भारत की नारी जाति की समस्त परख समस्याएं हैं जिनसे योग्य नारी जाति संघर्ष कर रही थी प्रेमचंद ने अपने साहित्य में इसी संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

नारी मुक्ति का यह संघर्ष अभी वर्तमान है इसलिए प्रेमचंद का साहित्य आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में नारी जीवन के हर पहलू को चित्रित किया है। प्रत्येक समस्या उनके चरित्र शीलगुण के प्रत्येक पक्ष उनमें विद्यमान सेवा साहस त्याग दृढ़ता और संयम जैसे उच्च मानवीय गुणों के साथ-साथ ईर्ष्या द्वेष आभूषण प्रियता रूढ़िवादिता आत्मविश्वास जैसी दुर्बलता को भी चित्रित किया है। वह हमारी नारी विषयक दृष्टि कई तरह के अंतरविरोधों का शिकार होती है। प्रेमचंद में भी यह अंतर्विरोध मौजूद थे जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में हुई लेकिन इन अंतर्विरोध के बावजूद भी नारी विषयक दृष्टि में निरंतर परिवर्तन हुआ है जीवन के दूसरे क्षेत्रों की तरह यहां भी उनकी दृष्टि गतिशीलता की ओर उन्मुख है लेकिन इन्हें अंतरविरोधी को जाने समझे बिना प्रेमचंद के नारी चरित्र को नहीं समझा जा सकता और न ही उनके नारी संबंधों के दृष्टिकोण को।

प्रेमाश्रम उपन्यास के स्त्री पात्रों में मानवीय मूल्य : यह उपन्यास प्रेमचंद जी का बहुचर्चित उपन्यास है। प्रेमाश्रम उपन्यास में जो नारी पात्र है जैसे बिलासी, विद्यावती, गायत्री इन स्त्रियों में मानवीय मूल्यों का अध्ययन हम निम्नलिखित

प्रकार से करेंगे बिलासी प्रेमाश्रम उपन्यास की बिलासी मनोहर की पत्नी और बलराज की मां है यह एक निम्न वर्गीय कृषक की पत्नी है इस नाते उसके चरित्र में उन सभी विशेषताओं का समावेश है जो ग्राम में जीवन का प्रतिनिधित्व करता है वह पति से कहती है, ‘‘जब सारा गांव ही देख रहा है तब हम क्या गांव से बाहर हैं जैसे बन पड़ेगा देंगे इसमें कोई आपत्ति थोड़ी हुई जाती है हेट तो नारायण ही बना दिया है। क्या करने से ऊंचे हो जाएंगे? थोड़ा सा की हड्डी में दो-चार दिन में बटोर लूंगी जाकर तोर लेना।’’[1] उसे पता है कि उसके पति और बेटा बड़े आत्मसम्मानीय हैं। अपने पति मनोहर के मानसिक तनाव को दूर करने के लिए वह कादिर के साथ परिंदा गोश्त खा के पास जाती है वह राजा साहब के पास जाने से भी नहीं जी सकती है। बिलासी नारी होकर भी निर्भीक और साहसी है बिलासी दलित अधिकार के प्रति पूर्ण सचेत है। उसका और इसके चपरासी उसे चारागाह में जानवर चराने से रोकते हैं तो यह अन्याय सहन नहीं कर पाती वह कहती है, ‘‘हमारे मामा जी सदा से यहां चढ़ते आए हैं और सदा यहीं चलेंगे अच्छा सरकारी हुकुम है आज कह दिया अक्षरा वर छोड़ दो कल कहेंगे अपना अपना घर छोड़ दो पैर तले जाकर रहो ऐसा कोई अंधेर है।’’[2]

सब तरह के धैर्य और संतोष और शांति के बाद भी उसका क्रोध उबल ही पड़ा। उसकी मानवीय आत्मा गांव के स्थानीय तानाशाह के दैनिक अन्याय के प्रति विद्रोह कर ही बैठी चुपचाप सहन करने की भी एक मर्यादा होती है यहां बिलासी के इस बयान से स्पष्ट होता है, ‘‘कह देती हूं इन जानवरों के पीछे लोगों की नदी बह जाएगी माथे गिर जाएगी फैजू हटाती है या नहीं चुड़ैल इस पर बिना से उत्तर देती है तो हट जा दाढ़ी जार।’’

फैजू के धक्के से गिरकर वह बेहोश हो जाती है लेकिन जैसा उसने कहा था माथे गिर जाएगी गोश्त खा के अपनी जान गंवानी पड़ी। मनोहर ने औरत की इज्जत के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी। नारी पति और पुत्र की आकांक्षा इसलिए करती है उसकी आबः सुरक्षित रहे। बिलासी गरीब लाचार और विवश होते हुए भी अपने सम्मान को त्याग नहीं सकती किंतु इज्जत के साथ-साथ उसे पति और पुत्र भी प्रिय है बिलासी बड़ी आत्मसम्मान शक्तिशाली व्यक्तित्व वाली महिला है प्रेमचंद ही विधवा बिलासी में गर्व, भाव का उदय होना दिखा सकते थे। कि विधवा हुई तो क्या हुआ उसने अन्याय के सामने कभी सिर नहीं झुकाया वह कहती है, ‘‘मैं विधवा हो गई तो क्या घर सत्यानाश हुआ तो क्या किसी के सामने आंखें तो नीचे नहीं हुई।’’[4]

यहां उसका आत्म गौरव दिखाई देता है परंपरा और रूढ़ियों में जकड़ी हुई

भोली भाली शांत किसान ग्रहणी बिलासी को जुल्म के हाथे बरबस विद रोहिणी के राशि हासन पर बिठाया विद्यावतीः प्रेमाश्रम उपन्यास में विद्यावती को जमींदार ज्ञान शंकर की पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विद्यावती देखने में सुंदर और साथ ही खुले विचारों वाली स्त्री है। विद्या श्रद्धा जैसी नारियों को धन का थोड़ा भी मोह नहीं है। स्नेह बंधनों के कारण वह संयुक्त परिवार को श्रेसकर समझती है उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा है। ज्ञान शंकर यहां पात्र अत्यंत धूर्त लालची है विद्यावती ज्ञान शंकर से कहती है। ‘‘पुरुषार्थी लोग दूसरों की संपत्ति पर मुंह नहीं फैलाते अपने बाहुबल का भरोसा रखते हैं।’’[4]

प्रेमाश्रम के संघर्षशील नारी चरित्र और पति के खिलाफ विद्या की गुरु ना अपने जमाने में उठ रहे नारी आंदोलन की हवाओं का पता देती है इस नारी आंदोलन की शुरुआत 19वीं सदी के आखिरी दशकों में हुई थी जब पंडित रमाबाई रानाडे आनंदीबाई जोशी सौरव और रुकमा बाई जैसी स्त्रियां अपने घरों में पुरुषों द्वारा किए गए थोपे गए बंधनों को तोड़कर उच्च शिक्षा के लिए विदेश गई और लौटकर स्वदेश में स्त्रियों के आंदोलन को आगे बढ़ाया प्रेमाश्रम की रचना से ठीक पहले और उसकी रचना के दौरान स्त्री दर्पण (संपादक रामेश्वरी नेहरू 1909 इलाहाबाद) हिंदी प्रदेश में स्त्रियों की सबसे मुख्य पत्रिका थी ज्ञान शंकर संपत्ति के लालच में विद्यावती की बहन गायत्री के प्रेम जाल में फंस जाता है दोनों की आपत्तिजनक स्थिति देखकर विद्यावती को अपने पति के अनैतिकता पर गहरा मानसिक संताप होता है अंत में विद्यावती अपने पति के पतन को देखने में असमर्थ और उसको सुमार्ग पर लाने में सफल नहीं होने पर जहर खाकर आत्महत्या करती है उसके चरित्र में त्याग, सत्य, आदर्श मां, पत्नी, ग्रहणी कुलवधू के गुण हैं अतः विद्यावती के चरित्र में सत्य की विजय होती है उसका बेटा माय शंकर भी अपनी मां के आदर्शों को लेकर ही चलता है श्रद्धाः प्रेमाश्रम में उच्च वर्गीय जमीदार वर्ग की नारी पात्र है श्रद्धा व्यक्तित्व शीलगुण में आदर्श पत्नी सहनशीलता असीम प्रेम आदि गुण विद्यमान है। श्रद्धा प्रेम शंकर की पत्नी है प्रेम शंकर जब अमेरिका से लौटते हैं तो पड़ोस के सब लोग कहते हैं कि सात समुंदर पार जाने से उसका हिंदुत्व नष्ट हो चुका है। वह प्रेमशंकर से मिलना नहीं चाहती थी उसके लिए प्रेमशंकर एक कल्पना थी इसी कल्पना पर वह प्राण अर्पण करती थी उसकी भक्ति केवल स्मृति पर थी जो अत्यंत भाव में और अनुराग पूर्ण थी श्रद्धा के रग-रग में सतीत्व का विचार रमा है उसे पता है कि उसका पति सदाचारी है। पति के प्रति उसकी भक्ति भावना भी है ग्रामवासियों की सेवा करने के कारण उसके पति को जेल भेज दिया जाता है। उसे अपने पति पर दृढ़ विश्वास होता है

उसका विश्वास और प्रेम पति को निरंतर प्रेरणा देती है। पति की तरह वह भी लोक सेवा करती है अपने आभूषण देकर लोक सेवा का व्रत निभाती है। त्याग और सेवा को ही अपने आभूषण समझती है। पति की नजर में श्रद्धा एक देवी के रूप में खड़ी मालूम होती है। वह एक विलक्षण ज्योति से प्रदीप्त थी वहां त्याग और अनुराग की विशाल मूर्ति थी जिसके कोमल नेत्रों में भक्ति और प्रेम की किरने प्रस्फुटित हो रही थी। वह पति पारायण और पतिव्रता स्त्री है वह सतीत्व रक्षा को नारी का सबसे बड़ा आभूषण समझती है। वह गायत्री से कहती है, ''तुम्हें भगवान ने धन दिया है। उससे अच्छे काम करो आना तू और विधवाओं को पालो धर्मशाला बनवाओ, तालाब और कुएं खुदवाने भक्ति को छोड़कर ज्ञान पर चलो।''

इस प्रकार उसके चरित्र में सेवाभाव, त्याग एवं धार्मिकता हमें दिखाई देती है। गायत्री प्रेमाश्रम उपन्यास में जमींदार वर्ग की प्रमुख औरतों में से एक है। वह उस कमलानंद बहादुर की पुत्री व विद्यावती की बड़ी बहन है। उसके माध्यम से उच्च वर्गीय किंतु शोषित वैधव्य कि यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है गायत्री हिंदू विधवा है गायत्री को उनसे उम्मीद नहीं थी जिनके लिए पुरुषों का रहस्य खुला पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था पर गायत्री को उस पर संदेह नहीं हुआ यद्यपि उसे मरे 3 साल बीत चुके थे पर वह अभी तक आध्यात्मिक श्रद्धा से उसकी स्मृति की आराधना किया करती थी। उसका निष्कपट वासना मुक्त प्रेम के रहस्य से अनभिज्ञता किंतु इसके साथ ही उसकी समझ उसके स्वभाव प्रधान अंग थी उसे धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों में विशेष रुचि थी। वह हंसमुख, विनयशील, सरल हृदय, विनोद प्रिया, रमणी थी उसकी हृदय में लीला और क्रीड़ा के लिए कोई स्थान नहीं था। इतनी संस्कारवान होने के बावजूद वह उम्र इच्छा के भार से बच नहीं पाती। गायत्री सरल भाव से ज्ञान शंकर के सौंदर्य पर मोहित हो जाती है। मर्यादा की सीमा के अंत तक पहुंच जाती है।

ज्ञान शंकर के साथ में बैठकर जब वहां से लौट रही थी तब ज्ञान शंकर की नीच हरकत के कारण उसे अत्यंत आत्म ग्लानि होती है। केवल आत्म वेदना का ज्ञान आ रहा था उसकी वह वस्तु लुट गई थी जो उसे जान से भी अधिक प्रिय थी जो उसके मान के रक्षक, उसके आत्म गौरव का आधार और उसके जीवन का अवलंब था। आंखें बंद करके विधवाओं से जीवन भर ब्रम्हचर्य व्रत के पालन की स्वाभाविक मांग करता है जो कि अन्याय है यदि गायत्री का पुनर्विवाह किया जाता तो ना तो विद्यावती जहर खाकर मरती और न ही गायत्री शिखर से गिर कर जान देती इस तरह हम संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रेमचंद के प्रेमाश्रम उपन्यास में स्त्री पात्रों में मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं।

संदर्भ

1. प्रेमाश्रम उपन्यास, प्रेमचंद, पृ. 10
2. प्रेमाश्रम उपन्यास, प्रेमचंद, पृ. 14
3. प्रेमाश्रम उपन्यास, प्रेमचंद, पृ. 18
4. प्रेमाश्रम उपन्यास, प्रेमचंद, पृ. 28
5. प्रेमाश्रम उपन्यास, प्रेमचंद, पृ. 30

18. हिंदी साहित्य एवं मानवीय मूल्य

प्रा.स्मिता कल्याणराव चालिकवार
साइंस कॉलेज, नांदेड

आधुनिक साहित्य में मूल्य शब्द का प्रयोग सामाजिक आर्थिक राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संम्पुर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है। मुल्य शब्द की आवश्यकता प्रेरणा आदर्श अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। आज मनुष्य पुराने विचारों को कालबाहय समझने लगा है प्राचीन मूल्य अस्वीकृत हो रहे हैं और नए-नए मूल्य स्वीकार किए जा रहे हैं। मूल्यों का प्रारंभ परिवार से होता है। परिवार के दायरे में बाहर निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम प्रांत देश सब उनव्यापक समाज के घटक है। अंतः साहित्य समाज का दर्पण है। मूल्य समाज की मान्यताओं और धारणाओं के अनुसार बनते मिटते और बदलते रहते हैं किंतु शाश्वत मूल्य न कभी बदलते हैं और न कभी मिटते हैं। आधुनिकता के कारण हम अपने मानवीय मूल्यों द्वारा परिवार की संकल्पना को अत्यंत संकुचित दृष्टि से देखने लगे हैं। आज पाश्चात्य संस्कृति के कारण मानवीय मूल्य बदलते हुए नजर आते हैं। पाश्चात्य अंधानुकरण की शैली से कई साहित्य का स्तर दिशा हीन है। परंतु पाश्चात्य आधुनिक उन्नति को अपनाकर हम प्रगल्भ बनने की दिशा में क्रान्ती करने लगे हैं। जो हमारे लिए आवश्यक है। प्राचीन काल का भारतीय साहित्य वेद, उपनिषद, पुराना, महाभारत इन साहित्य का योगदान इस विषय में अधिक मात्रा में रहा है। कई कवि या साहित्यिक लोग राजा महाराजाओं की गाथा गाने का भरसक प्रयास करते हैं और उन्होंने कभी मानवीय मूल्यों का अधःपतन होने भी नहीं दिया। जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी का काव्य मानवीय मूल्य एंव नैतिकता से ओतप्रोत है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राजा दशरथ के परिवार के माध्यम से आदर्श परिवार की परिकल्पना प्रस्तुत की है परिवार के सभी पात्र परस्पर आदर्शवत व्यवहार करते हैं। माता-पिता, पिता-पुत्र, भाई-बहनएवं पुत्र गुरु मित्र आदि का आदर्श रूप में दिखाई देता है। राम जिस

कुल में जन्में है उनके कृति में कहा जाता है।

''रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाए पर वचन न जाई।।''[1]

ईसी वचन को निभाने के लिए पिता दशरथ के वचनों का पालन कर श्रीराम ने स्नेह भाव के साथ वनगमन करते हुए कहा कि, ''मंगल समय स्नेह बस सोच परिहरिअतात, आयसूदेईअ हरिषि हिय कहि पुलके प्रभू गात।''[2] अर्थात हे पिताजी इस वनगमन के मंगल समय स्नेहवश होकर सोचना छोड़ दिजिए और हदय से प्रसन्न होकर मुझे वनगमन के लिए आज्ञा दिजिए। यह कहते हुए श्री तो देखिए कहीं उनके प्रभु अर्पिता जी समय होकर सोचना छोड़ दीजिए और राधे से प्रसन्न होकर मुझे गमन के लिए आज्ञा दीजिए यह कहते हुए श्रीराम सर्वांग पुलकित हो रहे थे। श्रीराम के चरित्र के माध्यम से सदियों तक भुलाया न जा सके ऐसा आदर्श तुलसीदास जी ने समाज के समक्ष रखा है। तुलसीदास ईश्वर के सगुण रूप में पक्षकार हैं। यह सृष्टि ईश्वर पर ही अवलंबित है इसलिए उनका नाम अवश्य रखना चाहिए अन्यथा इस भवसागर को पार करना मुश्किल होगा, ''राम कहो तो चलो, राम कहो तो चलूं, राम कहो तो चलो भाई रे। नहीं तो भव बेगारि महा परी है छूटते अति कठिनाई ये।''[3] कवियों की दृष्टि में गुरु का स्थान ईश्वर से भी बड़ा है गुरु का आदर सभी को करना चाहिए क्योंकि गुरु ही ईश्वर से मिलने वाले एकमात्र पर्याय है। इसीलिए गुरु नामस्मरण को मानव मुल्य के अंतर्गत स्वीकार किया गया है। संत तुलसीदास जी ने मानव मूल्यों को अपने काव्य के माध्यम से समाज में प्रभु श्रीराम के रूप में साहित्य का सबसे बड़ा जीवन मृत्यु एवं मानवीय मूल्य प्रस्तुत करते हैं। संत कबीर जी के दोहे में भी मूल्यों की स्थापना की बात अवश्य दिखाई देती है। ऐसा कोई वचन न होगा की कबीर के दिए हुए संदेशों में समाज के लिए मानवीय मूल्य से भरा न हो। शिक्षा के संबंध में भी संत कबीर के दिए हुए वचन आज भी प्रासंगिक है। वे कहते है, ''कबीर गुरु गुरवा मिल्ला, रली गया आटै लूंन। जाती पाती कुल सब मिटे, नाव धरौगे कूण।''[4] शिक्षा संबंधी प्रस्तुत दोहे से गुरु और शिष्य के मध्य किस प्रकार का सदभाव और मेल मिलाप चाहिए इसका पुख्ता उदा. प्रसुत हुआ है। गुरु और शिष्य का स्वतंत्र अस्तित्व न रहते हुए एक दूसरे को ज्ञान के द्वारा बांध दिया जाना हि गुरु शिष्य के महत्व को उजागर करता है। जैसे आटे में नमक मिलाने पर दोनों पृथक करना मुश्किल ही नहीं असंभव ही है। वैसे ही गुरु शिष्य दोनों में ज्ञान के आदान-प्रदान का भाव जरूरी है।

मानवीय मूल्यों में नैतिकता तथा आचरण की विनयता को अत्यंत महत्वपूर्ण तथा गंभीर माना गया है। हिंदी साहित्य में इसके जगह जगह पर उदा. मिलते हैं,

''कथणी कथी तो क्या भया, जे करणी न ठहराह। कालबूत के कोट ज्यू, देषत ही ठहिं जाई।''[5] इन पंक्तियों में कबीर जी ने बड़ा ही सुंदर संदेश दिया है। वे कहते हैं केवल उपदेश का स्वंय आचरण न किया तो मानव ज्ञानियों के मध्य अथवा सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा। इस तरह कालबूत के बने कंगुरे थोड़ी सी ठसक में ही ठह जाते हैं उसी तरह मनाय थोड़ी सी सत्य की परीक्षा पर डालडौल हो जाता है। ऐसे में औरों को उपदेश देना कहाँ तक उचित है। इस प्रकार का प्रश्न भी कबीर जैसे फक्कड़ संत ने समाज के प्रति किया है। मानव जीवन में नैतिक मूल्यों का होना नितांत आवश्यक है। इसलिए उपदेश के संदर्भ में जैसी कथनी वैसी करनी होना भी जरूरी है। अन्यथा उसका कोई मोल नहीं रहेगा। संत कबीर जी के दोहे में मूल्यों की बात अवश्य दिखाई देती है।

मानवीय मूल्यों की ओर अत्यंत प्रेरणात्मक रुप से प्रकाश डालने वाला एकाकी का जिक्र हम यहाँ करेंगे जो महात्मा गांधी जी की अंहिसा इस मौलिक एवं नैतिक मूल्य बोध का प्रदर्शित करने वाला एकांकी 'बा और बापू' है। प्रस्तुत एकांकी में रामनरेश त्रिपाठी जी ने मनुष्य के जीवन में अहिंसात्मकता का कितना महत्व होता है इसको ध्यान में रखते हुए अंहिसात्मक जीवन मूल्य की पुष्टि को अभिव्यक्त किया है। अंत में हम यह कहेंगे की हिंदी साहित्य के द्वारा मानव समाज में मानवी जीवन मूल्यों को उद्घाटित करने का सफल प्रयास हुआ है।

सारांश : साहित्यकार का कोई भी कार्य निरुद्देश्य नहीं होता यह बात सर्वविदित है उसके साथ-साथ साहित्य में मानवीय जीवन मूल्यों में किस ढंग से अविरत रुप में प्रतिबिंबित किया गया है। इसका आविष्कार हिंदी साहित्य है। मानवीय जीवन में संवेदन मन को लेकर समाज की प्रत्येक गतिविधी एवं हलचल को मध्य नजर रखते हुए आवश्यक जीवन मूल्यों का प्रतिपादन हिंदी साहित्य में बखूबी मिलता है। साहित्य और मानवीय जीवन के मूल्य इनका गहरा संबंध स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। जहां आवश्यक हो वहां साहित्यकार के द्वारा समाज की हर गतिविधी पर मानवीय मूल्यों के संस्कार साहित्य करता रहता है। यह विशेष बात है।

संदर्भ

1. रामचरित मानस, तुलसीदास, पृ. 7
2. रामचरित मानस, तुलसीदास, पृ. 392
3. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, पृ. 10
4. कबीर ग्रंथावली सटीक, डॉ. पुष्पलाल सिंह, पृ. 84
5. कबीर ग्रंथावली सटीक, डॉ. पुपलाल सिंह, पृ. 182

19. एक कंठ विषपायी में मूल्य-विवेचन

प्रा. डॉ. मनोहर गंगाधरराव चपळे

अध्यक्ष, सहयोगी प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक

हिन्दी विभाग, महात्मा बसवेश्वर महाविद्यालय, लातूर

आधुनिक हिन्दी रचनाकारों में दुष्यन्त कुमार का नाम उल्लेखनीय है। ''दुष्यंत कुमार उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने हिंन्दी साहित्य को नया मोड़ दिया। 'एक कंठ विषपायी' उनका बहुचर्चित गीतिनाट्य है। आलोचकों ने इसे 'अंधायुग' के बाद की अनुपम रचना के रूप में स्वीकार किया है।''[1] अनेक गोष्ठियों के माध्यम से सुधी समीक्षक इस संदर्भ में समय-समय पर अपने विचार प्रकट करते रहे हैं। ''यह गीतिनाट्य सितंबर 1963 में लोकभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया। इसके साथ ही कल्पना के अक्तूबर तथा नवंबर 1963 के अंकों में भी यह धारावाहिक रुप में प्रकाशित हुआ।''[2] उभय गीतिनाट्य के उपसंहार में अन्तर है जहाँ उद्घोषक की इस घोषणा के साथ नाटक की समाप्ति होती है :

''सीमा पर रक्तपात नहीं हुआ युध्द हो गया समाप्त
सुने सब प्रजा यह समाचार सुने''[3]

निश्चयात्मक गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है, वहाँ 'कल्पना' में एक दूसरा स्थूल अंत भी दिया है। जिसमें भगवान शंकर स्वयं पधारते हैं और ब्रह्मा कहते हैं:

''फिर संक्रमण काल का विष पी लिया उन्होंने
जिनके कारण फिर नूतन मूल्य की स्थापना हुई।''[4]

लेखक का कथन है कि उन्हें इस ''रचना के लेखन की प्रेरणा और विचार सूत्र अनंत मराल शास्त्री से प्राप्त हुई।''[5] इसमें नवीन और प्राचीन मान्यताओं का द्वंद्व चित्रित है। कथावस्तु का आधार दक्ष यज्ञ का वह आख्यान है जहाँ भगवान शिव का अपमान होता देख सती ने आत्मदाह किया था और शंकर ने गणों से यज्ञ विध्वंस कर उनके अपमान का बदला लिया था। हर नई पीढ़ी पुराणी पीढ़ी की मान्यता और विचारों के प्रति विद्रोह करती है, पुराने मूल्यों को समाप्त होते देख

पिछली पीढ़ी नवीन मूल्यों पर प्रहार करती है, लेकिन धीरे-धीरे वे नये विचारों को अपना लेती है। पुराणी मान्यताओं और विचारों की लाशें ढोने वाले लोग स्वयं या तो मर मिटते हैं या नये विचार अपना कर नई मान्यताओं का कालकूट विष पीकर विषपायी बन जाते हैं जैसे शिव।

प्रस्तुत अध्याय में हम 'एक कंठ विषपायी' का विश्लेषण आधुनिक जीवन मूल्यों के संदर्भ में कर रहे हैं। इस रचना में लेखक ने कथा को मिथकीय कलेवर देकर आधुनिक युगबोध एवं आधुनिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। इस रचना का प्रतिपाद्य लेखक के अनुसार "जर्जर रुढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रुप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करना है।"[6] इस प्रतिपाद्य को अभिव्यक्त करने के लिए लेखक ने शिव और सती के पौराणिक प्रसंग का चयन किया गया जो शतपथ ब्राह्मण, उपनिषद, शिवपूराण, अग्निपुराण आदि में वर्णित है। लेखक ने पौराणिक संदर्भ को वर्तमान युग से जोड़कर आधुनिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। प्रस्तुत रचना में आधुनिक जीवन मूल्यों का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया गया है।

एक कंठ विषपायी पौराणिक मिथकीय संदर्भ को लेकर लिखी गई आधुनिक युगबोध एवं मूल्यों को अभिव्यक्त करनेवाली सशक्त रचना है। इस गीतिनाट्य का पात्र विधान निम्न प्रकार से है :

1. सर्वहत	8. वरूण
2. शंकर	9. कुबेर
3. ब्रम्हा	10. शेष
4. विष्णु	11. द्वारपाल
5. इन्द्र शेष	12. अनुचर
6. दक्ष ब्रह्मा	13. एक सिपाही
7. वीरिणी	14. दूसरा सिपाही

कथानक का प्रारंभ वीरिणी और दक्ष के वार्तालाप से होता है। दक्ष ने अपने दूसरा सिपाही जामात्र शिव को छोड़कर यज्ञ में सभी देवताओं और लोक प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया है। वीरिणी इसे लोक मर्यादा के विरुध्द मानती है। इस समय समाचार मिलता है कि दक्ष सुता सती शिव के गणों के साथ यज्ञ मंडप में पहुँच गई है और सभी अतिथियों को अपशब्द कह रही है। अनाहूत होने के कारण वह महल में भी नहीं रहना चाहती है। वीरिणी द्वारा आत्महत्या की धमकी से दक्ष पहले तो सती का सम्मान करना चाहता है, लेकिन जब सर्वहत कहता है कि सती किसी व्यवस्था को नहीं मान रही है तो दक्ष सती को भी यज्ञ

में स्थान न देने का निश्चय करता है। थोड़ी देर बाद ही सूचना मिलती है कि सती ने अग्नि में आत्मदाह कर लिया है और महादेव का नंदी क्रोध से चला गया है।

द्वितीय दृश्य में युध्द का भीषण चित्र अंकित किया गया है। शिव गण उस नगरी का विध्वंस कर देते हैं। नगर का सारा परिवेश छिन्न भिन्न हो गया है। युध्द की मनोवृत्ति का शिकार सर्वहत कहता है :

"सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है,
और सड़ी हुई लाशें है।
क्षत विक्षत तन है
और उन पर भिन्नाते हुए चीलों, गिद्धों के झुंड,
और मक्खियाँ हैं।"[7]

सर्वहत दक्ष नगरी के रक्तपात का एकमात्र साक्ष्य है। शिव की प्रतिहिंसा का मूर्तिमान रुप है। स्वयं शिव प्रतिहिंसा की मूर्ति बन जाते हैं वे सती के मृत शरीर को लादे देवों से प्रतिशोध लेने का निश्चय करते हैं।

तृतीय दृश्य में शंकर के मानसिक द्वंद्व का सुंदर चित्रण किया गया है। सती के विरह में शिव सामान्य जन की तरह प्रलाप करते हैं। वरुण और कुबेर शिव से संधि करना चाहते हैं, लेकिन शिव को सिवाय युध्द के और कुछ नहीं सूझता वे कहते हैं कि यदि संध्या तक सती में चेतना नहीं आई तो पूरा ब्रह्मांड भस्म कर दूँगा।

"सती में न आई चेतना
तो मेरा क्रोध देव भोगेंगे।
...रुधिर वमन करेंगी दिशाएँ दस
आवर्ती पवन आग उगलेंगे
चूर्ण, चूर्ण होंगी गिरि-मालाएँ
सिंधु सूख जाएँगे
कह देना-
होगा दिग्दाह रुधिर वर्षण के साथ-साथ
पूरा ब्रह्मांड भस्म कर दूँगा।"[8]

चतुर्थ दृश्य में ब्रह्मा के भवन का एक कक्ष है जिसमें इन्द्र सेनापति के वेश में युद्ध करने के लिए भगवान ब्रह्मा की अनुमति लेने आए हैं। इन्द्र वरुण कुबेर में भी नहीं रहना चाहती है। वीरिणी द्वारा आत्महत्या की धमकी से दक्ष पहले तो सती का सम्मान करना चाहता है, लेकिन जब सर्वहत कहता है कि सती किसी

व्यवस्था को नहीं मान रही है तो दक्ष सती को भी यज्ञ में स्थान न देने का निश्चय करता है। थोड़ी देर बाद ही सूचना मिलती है कि सती ने अग्नि में आत्मदाह कर लिया है और महादेव का नंदी क्रोध से चला गया है।

शिव के साथ युध्द करने का निश्चय करते हैं किन्तु ब्रह्मा उनका साथ नहीं देते। इन्द्र प्रजा की रक्षा के लिए युध्द चाहते हैं, लेकिन ब्रह्मा इसे आत्मघात मानते हैं। वे शिव की सेना को बढ़ते हुए देखकर भी उत्तेजित नहीं होते। शिव की सेना को और निकट आने देने का आदेश देते हैं। इन्द्र पुनः आत्मरक्षा के नाम पर युध्द की आज्ञा चाहते हैं। ब्रह्मा कहते हैं :

''मैं आज्ञा दूँ
लेकिन मैं तो आत्मघात को
आत्मसुरक्षा नहीं समझता।''[9]

उनके विचार से युध्द समस्या का समाधान नहीं है। भीड़ के उत्तेजित नारों और दबाव के बावजूद वे युध्द की आज्ञा नहीं देते हैं। उनके अनुसार यदि दूसरा पक्ष अंधा हो जाए तो तुम भी उसी तरह क्रोधान्ध हो जाओगे? क्या युध्द स्वयं में कोई उपलब्धि है? इन्द्र का विचार है कि जहाँ न्याय की हत्या हो रही हो, जहाँ आसुरी शक्तियाँ सिर उठायें वहाँ धैर्य का दुर्ग अंततः ढह जाता है। तब एक मात्र उपाय युध्द ही रह जाता है। ब्रह्मा इसे सामूहिक आत्मघात की संज्ञा देते हैं।

इसी समय सर्वहत प्रवेश कर इन्द्र से युध्द की अनिवार्यता पर व्यंग करता है। वह कहता है कि युध्द चाहनेवाले एवं जो युध्द चाहते हों वह भी नये मूल्यों से कतराते हैं :

''युध्द एक व्यस्तता का नाटक है,
तुमने भी न्याय के नाम पर
यह नाटक रचना चाहा था
नये सत्य की सृजन व्यथा से
कतराना बचना चाहा था।''[10]

विष्णु शिव के पास प्रणाम बाण छोड़ते हैं। थोड़ी देर बाद सूचना मिलती है कि शिव की सेनाएँ वापस लौट गई हैं, युध्द समाप्त हो गया है :

सुने सब प्रजा
यह समाचार सुने
महादेव शंकर की सेनाएँ लौट गई...।
सीमा पर रक्त पात नहीं हुआ...।
सुने सब प्रजा।

युध्द हो गया समाप्त।
यह समाचार सुने...।''[11]

'एक कंठ विषपायी' में दो विरोधी विचारधाराओं और पात्रों का संघर्ष है। एक ओर दक्ष हैं जो जानबूझकर शिव को अपमानित करने की योजना बनाते हैं, तो दूसरी ओर उनकी पत्नी वीरिणी है जो समझौता करके मामले को टालना चाहती है। एक ओर विषपायी शिव है जो प्रतिशोध की ज्याला में जलकर युध्द के लिए उतारू है और तीसरी ओर इंद्रादि देवता है जो युध्द का जवाब युध्द से देकर सामूहिक आत्महत्या की बात करते हैं। नाटक का द्वंद्व एक साथ दो स्तरों पर चलता है एक युध्द की विभिषिका के स्तर पर और दूसरा परंपरा के बोझ के स्तर पर। युध्द करना चाहिए या नहीं यह प्रश्न द्वन्द्व का कारण है। पुरानी पीढ़ी और नवीन पीढ़ी का संघर्ष दृष्टव्य है।

प्रस्तुत नाटक के चरित्रों के संबंध में शिवशंकर कटारे लिखते हैं, ''चरित्रांकन की दृष्टि से एक कंठ विषपायी के लगभग सभी पात्र टाइप बन गये हैं। सर्वहत युध्द पीड़ित जनता का और शासन भ्रष्ट जनता का प्रतीक है। शंकर पुरातन व्यवस्था के, इंद्र युध्द प्रिय शासकों के और ब्रह्मा शांन्तिप्रिय शासक के प्रतीक है। इसी प्रकार प्रजापति दक्ष उध्दत राजा, वरुण, कुबेर अपनी ही रक्षा से भी देव और विष्णु व्यावहारिक व्यक्ति के रुप में हमारे सामने आते हैं।''[12]

सर्वहत 'एक कंठ विषपायी' का सबसे अधिक जीवंत पात्र है। वह सभी घटनाओं का साक्षी और जनता का प्रतीक है। प्रारंभ में वह एक अज्ञाकारी सेवक के रुप में दिखाई देता है, लेकिन दक्ष यज्ञ के विध्वंस के बाद वह विक्षिप्त सा हो जाता है। व्यंग्य उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह कटु सत्य बोलने वाला पात्र है। उसके प्रश्नों का उत्तर किसी के पास नहीं।

ब्रह्मा देवों के नायक दूरदर्शी चतुर और समझदार है। क्षणिक घटनाएँ उनको उत्तेजित नहीं करती। गंभीरता उनका भूषण है। इन्द्र के बार-बार उकसाने पर भी वे युध्द की आज्ञा नहीं देते। वास्तव में उन व्यक्तियों से युध्द को चाहे किसी हेतु लड़ा जाए, बुरा समझते हैं।

इन्द्र आधुनिक युध्द पिपासु शाशकों के प्रतीक हैं। वे मर्यादा और मान के नाम पर युध्द लड़ना चाहते हैं। आत्मसुरक्षा, संरक्षण और न्याय के नाम पर युध्द करनेवाले लोगों का तर्क है कि हानि लाभ के संदर्भों में मान और मर्यादा के प्रश्न नहीं परखे जाते। इन्द्र अहं, उग्रता, क्रोध और अधीर स्वभाव के चित्रित किये गए हैं। शिव क्रोधी हैं, किन्तु उनका क्रोध परिस्थितिजन्य है। वे अपमान का बदला क्रूरता से लेते हैं। वे अनुदारवादी हैं वे परंपराओं से चिपके रहना चाहते हैं। लेकिन

जब परिवर्तन होता है तो उनसे उत्पन्न विषम स्थितियों का विष भी वे ही पी लेते हैं। वे सच्चे प्रेमी के रुप में दिखाए गए हैं। शिव परंपरा भजक रहे हैं। वास्तव में शिव के तीन रुप अभिव्यक्त हुए हैं-एक रुप परंपरा भजक का है, दूसरा स्वरूप मानवीय संवेदनाओं से मुक्त देवता का है और तीसरा रुप परंपरा ग्रस्त व्यक्ति का है।

दक्ष हठी और क्रूर राजा है जो अपने ही अधिकारों से उन्मत्त है। वह परंपरा का संवाहक और नवीनता का विरोधक है। वीरिणी मातृसुलभ संवेदनाओं से भरी हुई आस्थावान नारी के रूप में चित्रित की गई है।

प्रस्तुत गीतिनाट्य 'एक कंठ विषपायी' में कवि पौराणिक परिवेश, रुढ़ियों और परंपराओं से नये मूल्यों को संकेतित करता है। वह परिवेश के नवीन दबाओं से उत्पन्न नये, मानव मूल्यों को स्वीकारता है। क्योंकि युग परिवर्तन के साथ जीवन के प्रतिमान बदलते हैं। इस संबंध में डॉ. रावत का मत उल्लेखनीय है, ''युध्दोत्तर युग में यह मूल्यगत-ह्रास हमें देखने को मिलता है। दूसरे एक ओर तो प्राचीन मूल्य मर्यादाओं के ऊपर से हमारा विश्वास हटने लगता है, दूसरी ओर नये मूल्यों को स्वीकार करने में हम कोई स्पष्ट धारणा नहीं बना पाते। इन मूल्यों के साथ परंपराएँ विशेष भूमिका निभाती हैं।''[13] प्रस्तुत काव्य में परंपरावादी और परंपरा मुक्त दोनों विचारधाराएँ बराबर चलती हैं। दक्ष पूर्ण रूप से परंपरा के पोषक हैं और शिव परंपरा पोषक और भंजक दोनों हैं। दक्ष शिव से इसलिए विरोध में हैं कि, उन्होंने सती को बहकाकर उससे विवाह कर उनकी लोकहँसाई की। इसलिए वह यज्ञ में शिव को आमंत्रित नहीं करता कवि इंद्र के शब्दों में इस दृष्टिकोण को समझाता है :

''प्रभु,
क्यों लोग नए को ऊपर आने देना नहीं चाहते?
चाहे वे साधारण जन हों
अथवा महादेव शंकर हों,
क्यों इनमें अधिकांश लोग लाशें होते हैं।
लाशें मरी मान्यताओं की, मरे विचारों की
भावों की...''[14]

आगे कवि इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। विष्णु इन्द्र से कहते हैं विश्वास रखो तुम जो चाहते हो वही होगा। इस त्रैलोक्य में केवल एक ही कंठ विषपायी है - शंकर। जिसकी अपार क्षमताएँ हैं। इसलिए मैंने एक बाण छोड़ा है जिसके कई फलक हैं। उसके माध्यम से शिव के कंधों से चिपकी भगवती सती की लाश हटकर खण्डों में विभक्त हो जाएगी और ये खण्ड जहाँ भी गिरेंगे वहाँ

सत्य के नये अंकुर फूट निकलेंगे वहाँ धर्म के तीर्थ धाम स्थापित होंगे। विष्णु के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि परंपराओं के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर नये अंकुर नये मूल्य नये परिवर्तन और नई सत्य दृष्टि उदित होती है। डॉ. तिवारी के शब्दों में, ''जिस तरह शव सड़ जाता है उसी तरह परंपराओं की दुर्गंध युगों में भर जाती है। ये विषम परंपराएँ जब तक नहीं टूटती तब तक नये मूल्य कायम नहीं होते और रक्षक ही भक्षक बने रहते हैं। शंकर की प्रतिहिंसा जागती है और महाकाल के तांडव की स्थिति आती है।''[15]

मूल्य परिवर्तन एक संक्रमण काल है, लोग नये सत्य की सृजन व्यवस्था से कतराते हैं क्योंकि वे परिवर्तन को सरलता से स्वीकार नहीं करते। सड़ी-गली परंपराओं का स्वाद नये मूल्यों को जन्म देता है। इस तरह कवि ने जर्जर रुढ़ियों और परंपराओं के शव से चिपटे लोगों के संदर्भ को शिव के प्रतीक से प्रस्तुत किया है। शिव द्वारा सती के शव से चिपटाए रखने का प्रसंग एक विशेष प्रकार की वैचारिक भावभूमि स्पष्ट करता है। ''परंपरा से चिपटे रहना किसी भी युग की मोहान्धता है शिव के कंधे से शव को हटाना ही परंपरा से मुक्ति पाने का संकेत है।''[16]

कवि ने पारंपरिक पौराणिक उपाख्यानों को नवीन अर्थवत्ता एवं सार्थकता प्रदान की है। जैसे क्रूर शासक की उछृंखलता एवं दंभपूर्ण नीतियों का परिणाम है, शिव द्वारा सती के शव को ढोना जर्जरित परंपराओं का अवलंबन है, युध्द के पश्चात सूने राजपथ, क्षत विक्षत शव, मंडराते गिद्द, चीलें, भिनभिनाती मक्खियाँ आदि-ह्रासमान मूल्यों के प्रतीक हैं। इसे कवि स्वयं स्वीकार करता है, ''उसी दिन मुझे लगा था कि जर्जर रुढ़ियों और परंपराओं के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रुप से आधुनिक पृष्ठभूमि और मूल्यों को संकेतित करने के लिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है।''[17]

प्रस्तुत काव्य के माध्यम से आधुनिक परिवेश की विभीषिकाओं तथा उथल-पुथल भरे समाज में हो रहे मूल्यों के-ह्रास और नई पुराणी परंपराओं के संघर्ष को जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ. हरिचरण शर्मा चिंतक के शब्दों में, ''एक कंठ विषपायी पौराणिक, प्राचीनता पर आधुनिक भावबोध की एक तस्वीर है, जो युध्द क्रान्त क्षुद्र जीवन के अंगों में डूबी हुई किन्तु नवीनता की डोर से बंधी हुई टंगी है। अतः स्पष्ट है कि कवि दुष्यंत कुमार ने अपने समसामायिक बोध और आधुनिक जीवन की गतिशीलता मूल्यहीनता और विसंगतियों, व्यंग को पौराणिक, मिथकीय आख्यान का आधार लेकर आधुनिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति की है।''[18] इस संबंध में स्वयं लेखक का कथन उल्लेखनीय है जो इस मत की पुष्टि करता है, ''उसी दिन मुझे लगा था कि जर्जर रुढ़ियों और परंपराओं के शव से

चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रुप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने के लिए इस कथा में पर्याप्त सामर्थ्य है तथा इस पर एक खण्डकाव्य लिखा जा सकता है।''[19]

अतः इस कथन से स्पष्ट होता है कि लेखक की रचना का प्रतिपाद्य आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने का ही है। अतः प्रस्तुत रचना में लेखक ने आधुनिक युग का युगबोध, आधुनिक मानव की मानसिकता एवं उससे जीवन मूल्यों आदर्शों की पर्याप्त अभिव्यक्ति दी है, रचनाकार इस कार्य में अधिक सकल हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

संदर्भ

1. एक कंठ विषपायी-आभार कथा दुष्यंत कुमार (बद्री विशाल पित्ती)
2. कल्पना-अक्तु. नवंबर सन 1963
3. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार- प्र.सं. सित. 1963 अंतिम पृ.
4. कल्पना पत्रिका, नवंबर 1963, पृ. 77
5. आभार कथा एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार
6. वही
7. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार, पृ. 45
8. वही, पृ. 98
9. वही, पृ. 122
10. वही, पृ. 122
11. वही, पृ. 122
12. स्वातंत्र्योत्तर गीतिनाट्य, शिवशंकर कटारे
13. आधुनिक खण्डकाव्यों में युगचेतना, डा.एन.डी. पाटील, पृ. 54
14. एक कंठ विषपायी, पृ. 131
15. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, डा. तिवारी, पृ. 253
16. आधुनिक खण्ड काव्यों में युगचेतना, एन.डी. पाटील, पृ. 55
17. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार (आभार कथा)
18. दुष्यंत कुमार और उनका साहित्य, डा. हरिचरण शर्मा चिंतक, पृ. 258
19. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार (आभार कथा)

20. बाल साहित्य में जीवन मूल्य

प्रा. श्रीकांत विलासगिर गोस्वामी

इंदिरा गांधी (वरिष्ठ) महाविद्यालय सिडको

नवीन नांदेड़

मूल्य शब्द का तात्पर्य किसी भौतिक वस्तु तथा मानसिक अवस्था के उस गुण से हैं जिसके माध्यम से मनुष्य की किसी भी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। ''मानवीय मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।''[1] मानवीय मूल्य की अवधारणा इसे कहना समीचीन होगा। मूल्य की विशेषताओं के बारे में देखेंगे तो यह ज्ञात होता है कि मूल्य कुछ हद तक आंतरिक भाव के होते हैं, जो किसी भी व्यक्ति विशेष में प्रतिबिंबित होते हुए दिखाई देते हैं। मूल्य की कोई मूर्त अवस्था नहीं होती है, वह अमूर्त स्वरूप में पाए जाते हैं। मानवीय मूल्यों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि मूल्य सीखे जाते हैं। इसलिए मनुष्य को मानवीय मूल्य को लेकर अचेतन से चेतन अवस्था में जीवन को आनंदित करने के लिए, जीवन में उत्साह भरने के लिए लाभदायक हो जाते हैं। मनुष्य के जीवन की मूलभूत नींव मानवीय मूल्य ही है।

मनुष्य की दृष्टि किस प्रकार की है अथवा मनुष्य में सकारात्मक मूल्य कौन से हैं जैसे की शांति, अहिंसा, धैर्य आदि गुण होते हैं। इसे मानवीय मूल्य के रूप में दृष्टिकोण के आधार पर मूल्य के प्रकार के रूप में देखा जा सकता है। इसके विरुद्ध नकारात्मक मूल्य जैसे अन्याय, हिंसा, कायरता आदि दिखाई देते हैं। किंतु इसे मानवीय मूल्य तथा नैतिकता के रूप में नहीं माना जा सकता। कार्यक्षेत्र को ध्यान में रखकर मूल्य की अवधारणा की जाए तो राजनीतिक मूल्य जिसमें ईमानदारी, सेवा भाव दिखाई देता है। न्यायिक मूल्य जिसमें सत्य, निष्ठा और सबसे महत्वपूर्ण निष्पक्षता आदि जरूरी है। व्यावसायिक मूल्य कार्य क्षेत्र के आधार पर बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं जैसे की जिम्मेदारी, सत्यनिष्ठा जवाबदेही आदि।

विषय क्षेत्र के आधार पर मूल्य की भिन्नता को देखा जा सकता है। जिसमें

सामाजिक मूल्य जैसे की कर्तव्य, अधिकार, न्याय आदि महत्वपूर्ण होते हैं। मानवीय मूल्य जैसे कि इसमें नैतिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं। नैतिक मूल्य के अंतर्गत ईमानदारी, न्याय अधिक महत्वपूर्ण है। आध्यात्मिक मूल्य के अंतर्गत शांति, प्रेम, अहिंसा अर्थात ईश्वर भक्ति गुरु सेवा आदि विशेष है। साथ ही प्रेम, दया आदि मूल्य को मनोवैज्ञानिक तौर पर देखा जाता है। सौंदर्यात्मक मूल्य कला, प्रकृति तथा मानवीय जीवन को कहते हैं।

प्रासिद्ध कवि 'प्रभाकर माचवे' की बहुत ही सुंदर काव्य पंक्तियां हैं। हमें मानव हित चिंतन का उपदेश देते हुए मानवीय मूल्य की ओर अग्रसर कराती है।

''दो आँखें दो कान दिए हैं।
दिए तुम्हें है दो-दो हाथ।
एक जीभ है एक गला है।
दिल है एक, एक है माथ
इसका मतलब एक और दो
सदा चलेंगे एक के साथ।
बच्चे बूढ़े काले गोरे
घरवाले हों या की अनाथ।
दो-दो पैर चले एक साथ,
पैर-पैर को मारे लात।
और हाथ को काटे हाथ,
पशु भी ऐसी करे ना घात।''[2]

हिंदी में प्रथम गजल विधा का प्रयोग करने वाले कवि के रूप में 'निरंकार देव सेवक' को माना जाता है। उन्होंने पढ़ाई करने के लिए अन्य साधनों की आवश्यकता होती है ऐसा कहा है। वह कौन-कौन से साधन है, उसे हम इस पंक्तियों के माध्यम से देख सकते हैं। यथा :

''हमको लड्डू कचौड़ी गरम चाहिए।
और सोने को बिस्तर नरम चाहिए।
पढ़ने-लिखने को कहती तो है मां मगर,
पहले कॉफी किताबें कलम चाहिए।''[3]

'सरस्वती कुमार दीपक' जी ने अपनी बाल कविता में मानव में आवश्यक गुण को लेकर कविता का मानवीकरण किया है। जिसमें प्रकृति में मानवता तथा मानवीय मूल्य साफ झलकता है। फल के माध्यम से मीठे शब्दों में उनकी कविता बोल रही है। जैसे :

''अपने स्वर में मिश्री घोले।
नहीं कहीं डाली से डोले।
अपने-अपने मुख से खोले।
एक साथ सारे फल बोले
हम मिठास को पाल रहे हैं।
रस की बूंदे ढाल रहे हैं।''[4]

प्रसिद्ध व्याकरणविद 'पं. कामताप्रसाद गुरु' के ज्येष्ठ पुत्र 'रामेश्वर गुरु' इन्होंने बाल प्रवृत्ति तथा रुचि को ध्यान में रखते हुए बाल कविताएं लिखी हैं। 'राजेश्वर गुरु' श्री रामेश्वर गुरु के अनुज है। इन्हें साहित्य रचना के संस्कार अपने परिवार से ही प्राप्त हुए हैं। उन्होंने बाल जीवन का चरित्र निर्माण एवं नैतिकता के विकास को मद्देनजर रखते हुए बाल गीत लिखे हैं। मानवीय गुणों का विकास किस प्रकार हो सकता है। क्रोध को अपने से कोसों दूर रखना है और यही सदाचार का नियम है। बालकों का चरित्र निर्माण सद्गुणों से युक्त होना चाहिए इस प्रकार की सीख अपनी कविता के माध्यम से दी है। मानवीय गुणों से युक्त 'राजेश्वर गुरु' की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :

''कभी मत रखो किसी से द्वेष,
किसी को पहुंचाओ मत क्लेश।
कभी मत करो फुट प्यारे,
फूट से मिटे राज्य सारे।
क्रोध को कभी न अपनाना,
क्रोध के पास न तुम जाना।
यही है सदाचार का नेम,
बालकों रखो सभी से प्रेम।''[5]

'डॉ रामेश्वर प्रसाद गुप्त' जी ने बालकों के चरित्र निर्माण के लिए प्रेरक बाल कविताएं लिखी है। जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बालकों का चरित्र है। तथा उसके निर्माण में समय सबसे महत्वपूर्ण होता है। यदि उसे बेकार बर्बाद किया तो वह कुछ काम का नहीं है। जीवन में समय का महत्व जो भी पहचानेगा उसका जीवन कभी भी व्यर्थ नहीं जाएगा, वह निरंतर जीवन में आगे ही बढ़ता जाएगा। एक उदाहरण दृष्टव्य है :

''जिसने समय नहीं पहचाना,
जीवन व्यर्थ उसी का जाना।
मलकर हाथ उसे रहजाना

केवल रह जाए पछताना।
अतः समय पर सब कर जाओ,
बच्चों कभी न समय गंवाओ।" [6]

प्रसिद्ध बाल साहित्यकार 'डॉ परशुराम शुक्ल' की पत्नी 'डॉ. विभा शुक्ला', उच्च शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी होने के कारण उन्होंने बाल कविता और प्रौढ़ साहित्य लिखा है। उनकी एक बाल कविता बहुत ही रोचक तथ्य को उजागर करती है। हिंदी भाषा के प्रति स्नेह, आस्था तथा उसे अपनाने की प्रदीर्घ भावना को बनाए रखते हुए देश की पहचान प्रस्तुत काव्य पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त हुई है। यथा :

"हिंदी भाषा से हम सबका, बच्चों जनम जनम का नाता।
भारत माँ का बच्चा बच्चा, इसमें रोता इसमें गाता।
हिंदी को भारत माता की, हम सब मिल पहचान बनाएं।
आओ हिंदी को अपनायें।" [7]

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष तक पहुंचते हैं कि, हिंदी बाल साहित्य में जीवन मूल्य एवं मानवीय मूल्य कूट-कूट कर भरा हुआ दृष्टव्य होता है। मानवीय मूल्य की अवधारणा,मानवता, सदाचार तथा सद्वर्तन, अभ्यास की लगन, मधुर वाणी, प्रेम तथा भाईचारा, समय का सदुपयोग आदि जीवन मूल्य प्रत्येक बालक तथा अभिभावक के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अतः हिंदी भाषा की गरिमा तथा सामर्थ्य को बढ़ाने का दायित्व हमारा है। हिंदी भाषा से हमारा जन्म जन्म का नाता है। भारत माँ का प्रत्येक बालक इसमें रोता और गाता है। जो लोग हिंदी को अपनी भाषा नहीं मानते उन सभी बालक तथा अभिभावक के प्रति अनुरोध है आओ मिलकर हम हिंदी को अपनायें और भारत की पहचान बनाएं।

संदर्भ

1. www.drishtiias.com human value
2. भारतीय बाल साहित्य का इतिहास, जय प्रकाश भारती, प्रकाशक अखिल भारती दिल्ली, संस्करण 2002, पृ. 215
3. वही, पृ. 50
4. वही, पृ. 210
5. हिंदी बाल साहित्य का अनुशीलन, डॉ. आनंद बक्षी, आराधना ब्रदर्स कानपुर, 2016, पृ. 28
6. वही, पृ. 39
7. वही

21. मानवीय मूल्य का नया आयाम : 'धार'

डॉ. बेंद्रे बसवेश्वर नागोराव
सहायक प्राध्यापक
डॉ. एन.एस.ए.एम. फर्स्ट ग्रेड कॉलेज, बैंगलोर

आधुनिक काल की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं शक्तिशाली विधा के रूप में उपन्यास को देखा जाता है। यह विधा निरंतर परिवर्तनशील एवं विकासशील है। यह विकास कहीं बार विषयवस्तु तो कई बार शैली के तौर पर दिखाई पड़ता है। उपन्यास साहित्य और मानवीय मूल्य का अंतःसंबंध उपन्यास के आरम्भ से ही दिखाई पड़ता है। उपन्यास को जीवन की व्याख्या माना जाता है और जीवन के केंद्र में मानवीयता तथा मानवीय मूल्य होते हैं। इसका प्रभाव उपन्यास पर पड़ना स्वाभाविक था। ऐसे में समकालीन साहित्य में विभिन्न विमर्शों का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें आदिवासी विमर्श भी महत्त्वपूर्ण है, यह विमर्श पूर्ण रूप से मानवीय मूल्यों की पैरवी करता है। आज अनेक आदिवासी उपन्यास लिखे जा रहे हैं। 'धार' उपन्यास एक आदिवासी केन्द्रित उपन्यास है, जिसके लेखक संजीव हैं। यह उपन्यास अपने मानवीय तत्व के कारण विशिष्ट स्थान रखता है।

संजीव अपने उपन्यास साहित्य से हिंदी उपन्यास को एक नया मोड़ प्रदान किया और अपनी एक अलग छवि बनाई। विशेष कर संजीव ने जो मानवीय मूल्य और आदिवासी जीवन पर केन्द्रित उपन्यास लिखें वे हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि करते हैं। संजीव अपने जीवन में नगरों से दूर बसे पहाड़ी इलाकों में गये वहाँ रहे, वे जीवन में निरंतर घूमते-फिरते रहे हैं। इससे उनके उपन्यासों में एक अलग तरह की सुगंध पाई जाती है। वे जंगलों में जाकर उन लोगों के पास बैठे। उनसे बहुत कुछ सीखा। उन लोगों की अनुभूतियों और संवेदनाओं को जाना, परखा। उसके बाद ही वे आदिवासी जीवन पर निरंतर लिखते रहे हैं। वैसे विचारों से संजीव प्रगतिशील-जनवादी जान पड़ते हैं। इसीलिए उनकी दृष्टि उपेक्षित, शोषित और पीड़ित लोगों पर केन्द्रित रहती है। इस तरह के 'जन' समाज में बहुसंख्यक होते

हुए भी वे औरों से निरंतर पीछे हैं, इतने पीछे की इन्हें आज पूछनेवाला तक कोई नहीं है, ना ही व्यवस्था इस पर कोई ठोस कार्य कर रही है। वर्तमान समय में उन लोगों केवल वोट के लिए जाना जाता है। राजनीति से जुड़े लोग केवल राजसत्ता के लिए, चुनाव से ठीक पहले विकास से कोसों दूर बसे उन बस्तियों में जाते हैं, आश्वासन का हवाई खजाना उन्हें देकर चुनाव जीत जाते हैं। आगे कई वर्षों तक उधर नहीं जाते। हालांकि कहा जाता है कि आज विकास हो रहा, लेकिन उन बस्तियों में आज भी कोई बदलाव नहीं आया। कई बार तो समाज का उच्च वर्ग षडयंत्रों से इन्हें पीछे धकेलता है।

उपन्यासकार संजीव के 'धार' उपन्यास में ऐसे लोगों का समाज उपजीव्य के रूप में चित्रण हुआ है। संजीव का अपने जीवन में उन लोगों की झोपड़ियों में जाना उनके सुख-दुःख को सुनकर उनसे बराबरी का हिस्सा निभाया तथा समय आने पर उन लोगों की सहायता करना यह उनके संवेदनशील व्यक्तित्व का परिचायक है, संजीव की यही संवेदना उपन्यास का रूप धारण कर पाठक सन्मुख मुखरित होती है। वास्तव में मानवीय मूल्य और मानवीयता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है। वास्तविक जीवन में संजीव इन आदिवासी लोगों का आदर करते हैं। दूसरों का 'आदर करना' यह एक 'मानवीय मूल्य' है। जो अगर हम अंगीकार करें तो हमारे देश की आधी समस्याएं दूर हो जाएगी। वे उनके प्रतिभाओं की तारीफ करते हैं। उनके अस्तित्व की बात करते हैं। उनके सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा की बात करते हैं। प्रकारांतर वे मानवीय मूल्यों के उन शिखरों की बात करते हैं, जहाँ से विश्व दृष्टि का बोध होता है। ऐसे प्रतिभा संपन्न एवं भोले-भाले आदिवासियों का जो विभिन्न तरीकों से शोषण किया जाता है, वे अपने उपन्यास में उसका चित्रण कर मानवीयता की दुहाई देते हैं। दूसरी ओर वे शांत रूप से उपन्यास के पात्रों के माध्यम से विरोध दर्शाते हैं। उनके उपन्यास की भाषा अत्यंत सरल एवं स्वाभाविक दिखाई पड़ती है।

'धार' उपन्यास में आदिवासी जीवन की गरिमा तथा उपलब्धियों को व्यक्त किया गया है। जो मानवीय मूल्यों के निर्वहन करते हुए प्रकृति की गोद में अपना जीवन यापन कर रहे थे। मानवीय सभ्यता के निर्माण में अपनी भूमिका निभाने वाले यह आदिवासी आज मुख्य प्रवाह से कट गये हैं। इस उपन्यास में नगर से कटे अछूते क्षेत्र और विषय का उद्‌घाटन किया गया है। इस उपन्यास के केंद्र में संथाल परगना का बाँसवाड़ा अंचल और आदिवासी जीवन है। बिहार राज्य का संथाल परगना कोयले की गहरी खदानों के लिए मशहूर हैं। वहाँ के मजदूर जो अपने पेट की आग को बुझाने के लिए जमीन के भीतर के ठंडे आग यानी कोयले को निकालने का काम करते हैं। जमीन के भीतर-ही-भीतर बड़े रूप में कोयला खदानों में काम करते हैं। कई बार यह लोग यहीं पर धँस भी जाते हैं। कभी जहरीली वायु के फूटने, तो कभी गंदा पानी भरने से दुर्घटनाएँ होती हैं। इसी प्रकार के लोगों की करुण कथा-व्यथा को संजीव अपने उपन्यास धार में व्यक्त करते हैं। मानवीयता की दुहाई देनेवाला समाज इस मुद्दे की ओर तटस्थ नजरों से देखता है या कहीं बार देखना भी नहीं चाहता। इस उपन्यास में पूंजीवादी व्यवस्था, बिचौलियों की कुटिलता, अवैध खनन, माफिया गिरोह का आतंक, राष्ट्रीय सम्पति की लूट, श्रमजीवीयों का शोषण आदिवासी जीवन और व्यवस्थापन विसंगतियों का यथार्थ अंकन पूरे मानवीयता के साथ मिलता हैं। इस उपन्यास के संबंध में डॉ. रामविनोद सिंह लिखते हैं, ''आलोच्य उपन्यास में विद्रोह विचार, दिशा और परिवेश का सफलता पूर्वक अधिग्रहण हुआ है।''[1] मानवीय मूल्य के हनन का एक और रूप 'धार' उपन्यास में मजदूर वर्ग का शोषण और संघर्षमय जीवन पूर्ण रूप से उभरकर सामने आता है। उपन्यास में परिस्थितियों के परिणाम स्वरुप उन मजदूरों में नई चेतना उत्पन्न और विकसित होती है। वह चेतना राष्ट्रीय चेतना तक पहुंचती है। इसी राष्ट्रीय चेतना को कई बार 'अस्मिता की चेतना' कहकर उसका कद छोटा करने का प्रयास भी हुआ है। यही तत्व इस उपन्यास में मानवीय मूल्यों के रक्षा तक पहुँच जाता है। अतः इसी मानवीय मूल्यों के धरातल पर संजीव के उपन्यास-शैली की ताकत और कमी दोनों दिखाई पड़ती है। हमें उपन्यास में जन-खदान का निर्माण, कथावस्तु विकास और उपन्यास के उद्देश्य के माध्यम से दिखाई पड़ता है। तो दूसरी तरफ इस उपन्यास में आदिवासी जीवन एवं संस्कृति को भी चित्रित किया गया है, जिसमें संथाल आदिवासी जीवन के संघर्ष और शोषण को प्रधानता मिली है। इस उपन्यास के पूर्वार्ध में आदिवासी जीवन और पूंजीपति वर्ग द्वारा किया जानेवाला अमानवीय शोषण को रेखांकित किया गया। वहीं उतरार्ध में नई चेतना, अधिकार बोध और संघर्ष के पहल का रचनात्मक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में व्यक्त नई चेतना मानवीयता की पैरवी करते दिखाई देती है।

मानवीय सभ्यता के विकास में आर्थिक शोषण के कई रूप दिखाई देते हैं। आर्थिक शोषण का कोई भी रूप मानवीय मूल्यों का हनन करता है। उपन्यास में संथाल आदिवासियों का बाह्यशक्तियों द्वारा अत्याधिक शोषण होता है। वे जीवन भर कड़ी मेहनत करने पर भी अभावग्रस्त एवं बेहाल स्थिति में जीवन जीते हैं। उन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता। यह तो हुआ आर्थिक शोषण यानि श्रम का शोषण। दूसरी ओर आदिवासी औरतों पर अत्याचार किया जाता है।

महिलाओं का शोषण किसी भी समाज के पिछड़ेपन को बताता है। यह मानवीय मूल्य के हनन का सबसे घिनोना उदाहरण होता है। इन दोनों प्रकार के शोषण का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यास की पात्र मैना आदिवासी औरतों पर होते अत्याचारों को बताती है। "हाँ हम पापिन, हमारा माँ पापिन, ऊ सब धरमात्मा। कोई भी जनाना ई कुत्ता लोग से बचा नई।"[2] अतः इस उपन्यास में बताया गया है कि इन आदिवासी औरतों का शोषण ना सिर्फ खदान मालिकों से बल्कि पुलिस, पंडित, जमींदार आदि के द्वारा भी किया जाता है।

बाँसगडा के आदिवासियों के अस्तित्व पर पूंजीपति, ठेकेदार, दलाल, कारखानादार और अधिकारियों का अधिकार है। आदिवासी समुदाय उसके खिलाफ कुछ नहीं कर पाते। उन आदिवासियों को लगता है कि इनके इलाके में ढेर सारी खदाने और छोटे से लेकर बड़े कारखाने होने के बावजूद भी उनका जीवन असुरक्षित और अत्यंत अभावग्रस्त है। उन ठेकेदारों द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त करनेवाले ये पंक्तियाँ, "ठेकेदार अब भी ढोर डांगरों की तरह उन्हें काम कराने हाक कर ले जाते हैं और जरा-जरा सी बात पर पीटते हैं।"[3] इस प्रकार के खदानों में अनेक मजदूर अपनी जान गँवा देते हैं, उनकी कोई खबर सुनाई नहीं देती। पुलिस और अधिकारियों द्वारा भी उन आदिवासियों को न्याय नहीं मिलता। बल्कि इसके लिए भी उनसे रिश्वत लिया जाता है। कई बार तो किसी निरापराधी आदिवासी की गोली मार कर हत्या कर दी जाती है। इसी कारण आदिवासी पुलिस से डरते हैं, यह वास्तविक सत्य संजीव अपने उपन्यास में बताते है। मानवीयता की रक्षा का जिम्मा जिन पर है उनसे डरना यह बताता है की यहाँ मानवीयता की हत्या पहले से हो चुकी है। इन्हीं कारणों से उपन्यास में आदिवासी आतंकित होकर सोचते हैं, "अब बाँसगडा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनना या माफिया का।"[4] उपन्यासकार आदिवासी विस्थापन की समस्या का अन्य कारण यह आतंक भी बताते है। किस प्रकार संथाल आदिवासी दोहरे शोषण से मुक्ति पाने के लिए अपने मूल स्थान को छोड़ कहीं और विस्थापन कर रहे हैं। उपन्यास की पात्र मैना की माँ को शोषण का विरोध करने पर उसे अनेक यातनाओं से गुजरना पड़ता है। उसे ओझा की सहायता से डायन घोषित कर गाँव से बाहर निकाला जाता है। मैना को भी इसी के लिए जेल की सजा तक भुगतनी पड़ती है। महेंद्रबाबू जैसे पात्र अपने पैसे और राजनीतिक परिचय का फायदा लेते हुए वहाँ के पुलिस एवं अधिकारियों को मुँह मांगी रकम देकर अपने साथ कर लेते हैं। और वे लोग महेंद्रबाबू के कार्य में उनकी सहायता करते हैं।

'जन-खदान' के रूप में मानवीयता का उच्चतम उदाहरण इस उपन्यास में

प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में अविनाश शर्मा, मैना, पांडा और अन्य आदिवासियों के सहयोग एवं सहकारिता से जन-खदान का निर्माण किया जाता है। किन्तु व्यवस्था उन आदिवासियों के साथ निर्मम व्यवहार करती है। जन-खदान संघटन कड़ी मेहनत से कम दिनों में महत्त्वपूर्ण बन जाता है। जन-खदान के आदिवासियों द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि जीवनयापन के लिए अनिवार्य कोयला लेकर बाकी कोयला राष्ट्र को सौंपा जाएगा। जिससे देश का विकास हो। अतः यहाँ पर रचनाकार आदिवासियों की स्वाभाविक प्रकृति का अनायास चित्रण कर देते हैं। आदिवासियों में धन संचित करने की प्रवृत्ति नहीं होती। इस जन-खदान के माध्यम से बहुत सारा कोयला संचित किया जाता है। जो राष्ट्र को समर्पित करना है। यह बात सरकार को बताई जाती है, लेकिन सरकार की ओर से उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता। बड़े प्रयासों के बाद सरकारी अधिकारी आते भी है तो किसी पूर्वाग्रह से दूषित मानसिकता को लिए। कोयले खदान के स्थिति का मुआयना किया जाता है। वहाँ पर भी पुलिस उन आदिवासियों से रिश्वत की मांग करती है। तब गाँव के दुलाल मंडल कहते हैं, *"हियां दस दिन से एक भी आदमी मजूरी नहीं लेता घर से खा-पी के इसको खड़ा किया और आज कोयला निकलने का वखत आया तो इनको दे दें बीस हजार। जा के मुर्गा, बोतल और रंडी के साथ मौज करें वाह रे।"*[5] अनेक अच्छाईयों के बावजूद भी जन-खदाने के स्थान पर पूँजिपति महेंद्रबाबू के कोयला खदान का राष्ट्रीयीकरण होता है। इस उपन्यास में राष्ट्रीयकरण के नाम पर होने वाले भ्रष्टाचार और शोषण का चित्रण भी किया गया है। किस प्रकार पूँजिपति लोग राष्ट्र की संपत्ती का शोषण करते हैं और इस काम में दलाल एवं भ्रष्ट अधिकारी उनकी मदद करते हैं। इसका यथार्थ अंकन इस उपन्यास में होता है। कोई समाज यदि अपने मानवीय मूल्यों के चलते कुछ भला करना भी चाहे तो एक वर्ग उन्हें रोकने का निरंतर प्रयास करता दिखाई देता है। यह वर्ग आज भी व्यवस्था के हर रूप में मौजूद है। जब तक हम इस विचार को समूल नष्ट नहीं करते, तब यह जानेवाला नहीं है। यह सिर्फ समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना से ही संभव है।

मानव विकास की दुहाई देनेवाले पूँजिपतियों के शोषण और मानवीयता की रक्षा की दुहाई देनेवाले व्यवस्था के निष्क्रियता से आदिवासियों के आत्मविश्वास को हमेशा तोड़ा जाता है। ऐसे में दुर्दम्य जिजीविषा रखनेवाले आदिवासी यह सह लेते हैं और सरकार के मदद की आस करते हैं। लेकिन वह उन्हें कभी नहीं मिलता। "जिसे गर्भ मानकर वे सपने संजोते आये थे, वह एक आघात से गर्भपात में बदल गया। रह-रह कर पछतावे की पीर उन्हें टीस रही थी। वे जितना ही

सोचते पछतावें, अपमान और आक्रोश में छटपटाने लगते।"[6] इस उपन्यास में मानवीय मूल्यों के हनन का वह वह रूप चित्रित होता है, जो ज्यादातर रेखांकित नहीं किया गया।

मानवीयता के विकास के मूलभूत बाधावों में किसी के धैर्य को कुचलना अग्रगण्य अवश्य होगा। उपन्यास में मैना एवं अन्य पात्रों के धैर्य को कुचला गया। यह मानवीयता के शोषण का वह रूप है, जिसको सभ्यता के इतिहास में जिस-जिस सभ्यता ने हलके में लिया वह सभ्यता नष्ट हुयी या होने की कगार पर हैं। जैसे आदिवासियों की शक्ति, अस्तित्व को व्यक्त करने के साधन को किस प्रकार निर्माणाधीन अवस्था में ही व्यवस्था एवं पूंजीपति वर्गों द्वारा कुचला जाता है। यह उपन्यास मानवीयता के उस तत्व को व्यक्त करता है, जिसमें शोषण ना करने की गुहार होती है। अतः यह उपन्यास मानवीयता का चित्रण कर मानवीय मूल्य के नए आयाम को व्यक्त करता है। उपन्यास में व्यक्त यही मानवीय मूल्य समाज में हो रहे शोषण के विरोध की चेतना को स्थापित करेगा। यही मानवीय दृष्टि देश का भविष्य तय करेगी।

संदर्भ

1. नौवें दशक के हिंदी उपन्यास, डॉ. रामविनोद सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृ. 171
2. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 33
3. वही, पृ. 125
4. वही, पृ. 127
5. वही, पृ. 143
6. वही, पृ. 143

22. मध्ययुगीन साहित्य में मानवीय मूल्य

प्रो. डॉ. लक्ष्मण तु. काळे
इंदिरा गांधी (वरिष्ठ) महाविद्यालय
सिडको, नवीन नांदेड (महाराष्ट्र)

हर युग का साहित्यकार समाज का प्रतिबिंब साहित्य में अवतरित करने के लिए सिद्धहस्त होता है। साथ ही समाज, समुदाय, व्यष्टी-समष्टी जैसे शब्द के संबंध का समाज की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए साहित्यकार अपने कर्तव्य और निष्ठा के प्रति तात्विक विवेचन करता रहता है। तभी तो साहित्य में समाज की आपबीती, यथार्थता, जीवन संघर्ष, चुनौतियां, मौलिकता, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिकता, संस्कृति, संस्कार, नैतिकता, जन कल्याण एवं भविष्य कालीन संभावनाओं के साथ मानवीय मूल्य दृष्टिगत होते हैं। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि, साहित्यकार और उनके साहित्य की प्रासंगिकता सदियों से चली आ रही परंपरा आज के साहित्य का द्योतक बन गयी है। साहित्य मानव समुदाय को विभिन्न मूल्य के प्रति निष्ठा के साथ जागरुक रखता है एवं मानवीय मूल्यों को अवतरित करने की जद्दोजहद करता रहता है। यहां हम साहित्य के द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं आने वाली पीढ़ियों को मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने की औपचारिक और अनौपचारिकता से किस प्रकार शिक्षा प्रदान की गई इस बात पर विचार करेंगे। मानवीय मूल्यों के प्रति मध्यकाल का कवि किस तरह अपने साहित्य कृतियों के द्वारा मानवीय मूल्य की स्थापना करने के संदर्भ में एवं जनहितार्थ सामाजिक सत्यता की कसौटी पर चलने की सीख दिया करते थे इस बात की ओर हम प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे। मध्यकाल के भक्त कवियों ने छोटे-छोटे काव्य पदों के द्वारा समाज की यथार्थता का चित्र एवं आदर्श समाज की शिक्षा देने का मौलिक प्रयास किया हैं। जिससे मानवीय मूल्यों को स्थापित करने हेतु साहित्य का सहारा अवश्य मिला है। भक्तिकाल के कवियों ने हिंदी साहित्य के माध्यम से मानवीय मूल्यों के रुझान के लिए अपनी ओर से समय-समय पर भरसक प्रयास

किए हैं। इस बात को हम निम्नलिखित रूप से जानने की कोशिश करेंगे। गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत ही सरल शब्दों में कहा है :

"तुलसी भरोसे राम के निर्भय होके सोए।
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होए।।"

यहां तुलसी कहते हैं अपने इष्ट के भरोसे निर्भय रहिए। जो होना है वह होकर ही रहेगा किंतु जीवन में कुछ अनहोनी न हो और अनहोनी तभी संभव है जब मनुष्य अपने कर्म को सत्य और मानवता के साथ न करता हैं।

बेकार की चिंता और उलझन से मुक्त होने के साथ-साथ मनुष्य आशंकाओं एवं तनाव से मुक्त होकर अपना काम करने के भावों की शिक्षा यहां अवश्य मिलती हैं। संतों के ऐसे उपदेश मानवीय मूल्यों के साथ-साथ मन में दृढ़ निश्चय को स्थापित करने का परिचायक होते हैं। जिससे मानवीय मूल्यों को मजबूती स्थापित करने में ऐसे उपदेश सहायक सिद्ध होते हैं।

भक्तिकाल का अत्यंत विद्रोही कवि कबीर अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए ईश्वर अपने भीतर ही विद्यमान रहता है। पर मनुष्य इस बात को भूल जाता है और भौतिकता की ओर बढ़ते हुए मंदिर, मस्जिद, गिरजे में आराध्य के प्राप्ति की आशा करता है। ऐसे प्रसंग को कबीरदास जी ने एक मृग का उदाहरण देते हुए इस प्रकार प्रस्तुत किया है जो मनुष्य को एक आत्मीय मूल्य के प्रति उजागर करने में सहायक सिद्ध होता है। हिरन की नाभि में कस्तूरी होती है लेकिन अज्ञानता के कारण वह उसे अपने हृदय में ना जानकर उसकी खोज में बन-बन भटकता है। ईश्वर के अस्तित्व की खोज हृदय से हृदय तक होने की भावना उसके मन में नहीं है।

"कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन मांहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनियां देखे नांहि।।"[1]

कैसी विडंबना है कि मृग की नाभि में ही कस्तूरी का बास है लेकिन उसकी खोज में वह वन-वन भटकता है, ठीक ऐसे ही ईश्वर का तथा मानवीय मूल्य का प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास है किंतु कोई उसे देख नहीं पाता।

दूसरे स्थान पर कबीर कहते हैं कि खुद को धोखे में रखो लेकिन किसी और को धोखे में न रखें। चाहे स्वयं क्यों ना धोखे में रह ले वह अपने लिए फायदेमंद है, लेकिन किसी और को ठगना बड़े दुख की बात है।

"कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख उपजै और ठग्यां दुख होइ।।"[2]

अर्थात स्वयं को धोखे में डालने से सुख की प्राप्ति हो सकती है, लेकिन दूसरों को ठगने से दुख ही मिलेगा इसलिए दूसरों को ठगना अच्छा व्यवहार नहीं है। यहां

कबीर ने यह स्पष्ट किया है कि दूसरों को धोखा देना विश्वासघात है एवं औरों का नाश करना भी है। यहां कबीर द्वारा मानवीय मूल्य की बहुत ही प्रसिद्ध बात को उजागर करने का कार्य किया गया है। हो सके तो औरों के पक्ष में विश्वसनीयता को लेकर सहायता करने की बात को महत्व दिया गया है। यदि हम किसी को ठग कर अपना स्वार्थ प्राप्त करते हैं फिर भी हमारे मन में सामने वाले व्यक्ति को ठगाई जाने की भावना से ग्लानि समय-समय पर महसूस होती है। इस बात से हम छूट नहीं सकते। यह संदेश मानवीय मूल्यों की हिफाजत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

मानवीय मूल्यों को लेकर कबीर के विचार समाज के लिए अत्यंत प्रेरणादाई है। यहां कुछ और विचारों को लेकर कबीर द्वारा बताए गए मानवी मूल्यों को स्पष्ट करने की कोशिश है।

"कबीर चंदन के निड़ै, नींव कि चंदन होइ।
बूडा बंस बड़ाइता, यौं जिनि बूड़ैं कोइ।।"

संत कबीरदास जी का कहना है कि दूसरों के सद्गुण ग्रहण करने से बुरा व्यक्ति भी अच्छा बन सकता है। अपनी साखी के माध्यम से बहुत ही सरल शब्दों में चंदन और नीम के पेड़ का उदाहरण देकर दोनों की भिन्न गुण-धर्म होने की बावजूद एक दूसरे के निकट रहने के कारण नीम भी चंदन जैसा सुगंध ग्रहण कर सकता है। मनुष्य नीम के पेड़ जैसा कितना ही कड़वा क्यों न हो चंदन जैसे सुगंधित व्यक्तित्व के सहवास में आकर स्वयं को चंदनमय अपने आप बना ही लेता है। भाव यह है कि दूसरों के साथ रहकर उनके सद्गुण अपनाने का प्रयास करना चाहिए। समाज में विचरण करते समय संगत का महत्व बहुत मायने रखता है। जाहिर है कि हम अच्छे की संगत में रहे तो अच्छे बनेंगे और बुरे की संगत में रहे तो निश्चित ही बुरे संस्कार हम पर हावी हो जाएंगे और उनसे छुटकारा पाना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए अच्छों की संगत का यह अत्यंत मौलिक विचार मानवीय मूल्यों को लेकर के चलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने भी इस बात को लेकर के अपने "मित्रता" निबंध में अच्छे मित्रों की संगत के लिए महत्वपूर्ण उपदेश दिया है। इसलिए यह बात मायने रखती है कि हम किन की संगत में अपने जीवन का बसेरा पूर्ण कर रहे हैं।

छोटी-छोटी बातों को लेकर कबीर जी ने अपने विचारों से जनता को सज्जनता रूपी उपदेश दिए हैं। संत कबीर के सदाचार के संदर्भ में विचारों को हम इस प्रकार देख सकते हैं। यहां पर खजूर के पेड़ का उदाहरण दिया है किंतु यहां पर अर्थ मनुष्य और मानवता को केंद्र में रखकर लिया गया है, यथा :

"बड़ा भया तो का भया, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"[4]

मनुष्य चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो खजूर के पेड़ जैसा उसका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि यदि पथिक को छाया न मिले तो वह पेड़ किस काम का और जिसके फल भी बहुत दूर लगते हो वह किसी जरूरतमंद या भूखे आदमी को खाने को न मिले तो वह फल भी किस काम क हैं। इसलिए बड़ा जरूर बनो लेकिन हर जरूरतमंद के काम आने के योग्य बनो, यही आचरण और सदाचार मनुष्य को मानवता की ओर ले जाता है और यही मानवीय मूल्य अत्यंत महत्वपूर्ण है।

"ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न होय।
स्वर्ण कलश मदिरा भरा, साधु निंदै सोय।।"[5]

इन पंक्तियों से कबीर स्पष्ट कहते हैं ऊंचे कुल में जन्म लेने से कोई ऊंचा नहीं होता, बल्कि ऊंचा बनने के लिए खुद का कर्म ऊंचा होना जरूरी है। जिस प्रकार सोना कितना भी मूल्यवान क्यों न हो स्वर्ण के कलश में यदि मदिरा भरी जाए तो कोई भी संत या साधु इस बात की निंदा ही करेगा। कबीर का यह सामाजिक मानवीय मूल्य अत्यंत महत्व रखता है कि किसी जाति धर्म में जन्म लेने से मनुष्य की उच्चता सिद्ध नहीं होती, बल्कि उसका कर्म उसके उच्चता एवं गौरव को चार चांद लगाकर जनता से रूबरू होता है। यह मानव जाति के प्रति विचार करने योग्य एवं दीर्घकालिक युगीन सत्य है। इस प्रकार कबीर ने अपने जीवन में समय-समय पर मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखते हुए अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके यह मानवीय मूल्यों को स्थापित करने वाले विचार कालजई एवं विचारनीय हैं। साथ ही अत्यंत प्रासंगिक भी सिद्ध होते हैं।

नीति विषयक विचारों के लिए हिंदी साहित्य के मध्यकालीन कवि बिहारी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उनकी बिहारी सतसई में नीति विषयक दोहे दिखाई देते हैं।

"नहीं परागु नहीं मधुर मधु नहीं विकासु इहिं काल।
अली, काली ही सों बंध्यों आगे कौन हवाल।।"

बिहारी राजा जयसिंह के दरबारी कवि रहे हैं। वह राजा के यथा स्थिति को ध्यान में रखते हुए कहते हैं की यदि राजा राज कार्य एवं समाज कार्य को अनदेखा कर अपनी नवोढ़ा पत्नी के प्रेम में अधिक समय व्यतीत करता है। इस अवस्था को ध्यान में रखकर उन्होंने प्रस्तुत दोहा लिखा है। इसके माध्यम से वे संदेश देते हैं कि यदि राजा इसी तरह पत्नी प्रेम में अपना समय अधिक व्यतीत करते है तो राज्य के कार्य भार को कौन संभालेगा। राजा के उत्तरदायित्व के प्रति वे अपना मशवरा प्रस्तुत करते हैं। यहां उन्होंने प्रजा के संबंध में नीति विषयक मानवी मूल्य

को उजागर किया है।

मध्यकाल के कवि रहीम ने भी मानवीय मूल्यों को ध्यान मे रखते हुए मूल्यात्मक काव्य निर्मिती में सहयोग दिया है। उनकी निम्नलिखित काव्य पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

"बड़े बडाई ना करें बड़ों ना बोले बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका है मोल।।"[7]

समाज में मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने हेतु विनम्रता का होना बहुत आवश्यक माना जाता है। विनम्रता से ही मान-सम्मान बढ़ता है और संबंधों में मजबूती आ जाती है। रहीम के अनुसार बड़े लोग स्वयं अपनी बड़ाई कभी नहीं करते अथवा बड़ी-बड़ी बातें भी नहीं करते। वह हमेशा विनम्र और धीर एवं गंभीर होते हैं। स्वयं को प्रकाशित रखने वाला हीरा कभी यह नहीं कहता कि मैं बड़ा हूं, मैं हीरा हूं और मेरा मोल लाखों में है। ठीक उसी प्रकार बड़े व्यक्तित्व भी अपनी बढ़ाई स्वयं नहीं करते यह विशेष बात है। धीर गंभीर होकर के मनुष्य जीवन की महानता को पाया जा सकता है। यह विचार प्रस्तुत दोहे के माध्यम से मानवीय मूल्य को स्थापित करने में सहायक है।

निष्कर्षतः उपरोक्त काव्य विवेचन को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि, मध्यकाल के कवियों के द्वारा मानव समाज में व्याप्त जाति-पांति, अंधविश्वास, उच्च नीचता आदि के संदर्भ में जो विचार है उन विचारों को गहराई से व्यक्त करती हैं। समाज के लिए किस प्रकार हितकर विचार आवश्यक है मनुष्य के संबंधों को लेकर, समाज जीवन को लेकर, उच्च नीचता को लेकर कुल मिलाकर मानव जीवन को समृद्ध करने एवं सुजलाम सुफलाम बनाने के लिए मध्यकाल के कवियों के विचार अग्रणी हैं। चाहे वह संत कवि हो या भक्त कवि हो। उनके विचार सकल मानव जाति के कल्याण के लिए हितकारी सिद्ध होते हैं। और जहां-जहां समाज में बुराई, दुर्दशा, जाति भेद से दुर्गति हुई है या विसंगति दिखाई देती है। वहां-वहां सुसंगत व्यवस्था स्थापन करने एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करने के लिए महत्वपूर्ण विचार अभिव्यक्त किए हैं। इसलिए मध्यकाल के कवियों के वैचारिकता में मानवीय मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

उपरोक्त आलोच्य दोहों के माध्यम से हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि सदाचार, सत्संगति, परोपकार, नैतिकता, मनुष्य जीवन में विनम्र भाव इन सारी स्थितियों का यथायोग्य वर्णन हुआ है और इन भावों तथा बर्ताव को लेकर के समाज को एक अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करने का काम मध्यकालीन कवियों के द्वारा संपन्न हुआ है। उनके काव्य बोल अपने अनुभूति के द्वारा प्रतिपादित किए

गए हैं। वह आज प्रासंगिक भी अवश्य रहे हैं। यह विशेष बात है। मानवीय मूल्यों की सजगता के प्रति मध्यकाल का कवि बड़ा सजग रहा है। जिससे समाज में मानवीय मूल्यों को महत्व दिया गया है।

संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली सटीक, डॉ. पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 281
2. वही, पृ. 284
3. वही, पृ. 287
4. वही, पृ. 19
5. वही, पृ. 19
6. काव्य तरंग-संपादक, डॉ. बालाजी भरे, संस्करण-2020, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, पृ. 77
7. वही, पृ. 64

❐❐